गिरीश कापडिया विरचित

योगकल्पलता

(सानुवाद)

योगकल्पलता

कर्ता

गिरीश परमानंद कापडिया 'कल्पेश'

अनुवाद

डॉ. मृगेंद्रनाथजी झा (साहित्याचार्य)

श्रुतभवन संशोधन केन्द्र

ग्रंथनाम	:	**योगकल्पलता**
विषय	:	उपदेश
भाषा	:	संस्कृत, हिंदी
कर्ता	:	गिरीश परमानंद कापडिया 'कल्पेश'
अनुवाद	:	श्री मृगेंद्रनाथजी झा
संपादक	:	मुनि वैराग्यरति विजय
प्रकाशक	:	श्रुतभवन संशोधन केन्द्र, पुणे
आवृत्ति	:	प्रथम, वि.सं.२०७१ (ई.२०१५)
पत्र	:	१२ + १३२

~: प्राप्तिस्थान :~

पूना : **श्रुतभवन संशोधन केन्द्र**
४७-४८, अचल फार्म, आगममंदिर से आगे,
सच्चाइ माता मंदिर के पास, कात्रज, पुणे-४११०४६
Mo. 7744005728 (9-00am to 5-00pm)
www.shrutbhavan.org
Email : shrutbhavan@gmail.com

अहमदाबाद : **श्रुतभवन (अहमदाबाद शाखा)**
C/o. उमंग शाह
बी-४२४, तीर्थराज कॉम्पलेक्स,
वी. एस. हॉस्पिटल के सामने मादलपुर, अहमदाबाद.
मो. ०९८२५१२८४८६

प्रकाशकीय

'**योगकल्पलता**' पुस्तक श्रीसंघ के करकमल में प्रस्तुत करते हुए हमें अतीव हर्ष का अनुभव हो रहा है। यद्यपि यह एक नूतन रचना है फिर भी उसके रचयिता एक गृहस्थ श्रावक है यह बडे गौरव की बात है। पुराने संपादन में ये तीन कृतियाँ अलग अलग पुस्तिका में मुद्रित हुई थी यहां पर सभी कृतियाँ अनुवाद के साथ प्रस्तुत है। इनका अनुवाद प्राज्ञवर्य श्री मृगेंद्रनाथजी झा ने किया है। अतः हम उनके ऋणी है। हम पूर्व प्रकाशकों के प्रति भी हमारी कृतज्ञता अभिव्यक्त करते हैं। संपादन में श्रुतभवन संशोधन केंद्र के सभी सहकर्मियों का प्रदान है। श्री विमलनाथ स्वामी जैन श्वेतांबर टेम्पल ट्रस्ट, बिबवेवाडी, पुणे ने अपनी ज्ञाननिधि से इस ग्रंथ प्रकाशन का लाभ लिया है अतः हम उनके प्रति भी आभारभाव प्रदर्शित करते हैं।

श्रुतभवन संशोधन केन्द्र, पुणे की समस्त गतिविधियों के मुख्य आधार स्तंभ मांगरोळ (गुजरात) निवासी श्री चंद्रकलाबेन सुंदरलाल शेठ परिवार एवं भाईश्री (ईन्टरनेशनल जैन फाउन्डेशन, मुंबई) परिवार के हम सदैव ऋणी है ।

– भरत शाह

(मानद अध्यक्ष)

श्री जिनशासन के परम तेजस्वी अधिनायक पूज्यपाद

आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न

पूज्य **गणिवर श्री वैराग्यरतिविजयजी म.सा.** की प्रेरणा से

श्री विमलनाथ स्वामी जैन श्वेतांबर टेम्पल ट्रस्ट,

बिबवेवाडी, पुणे

के ज्ञाननिधि से इस पुस्तक के प्रकाशन का लाभ लिया गया है।

आपकी श्रुतभक्ति की हार्दिक अनुमोदना

प्रवेश

इस संकलन में सु.गिरीशभाई की तीन नूतन रचना प्रस्तुत है। गिरीशभाई बचपन से ही वह बहुत मेधावी थे। उनके पिताजी परमानंदभाई कापडिया संस्कृत के पंडित थे। उन्होंने गिरीश को बचपन से ही संस्कृत का अभ्यास करवाया। इससे गिरीशभाई आठ साल की उम्र से संस्कृत में श्लोक बनाने लगे। बाण, हर्ष, कालिदास जैसे कवियों के प्रभाव में शृंगारिक कृतियाँ बनाते। चौदहवे साल में पू. पंन्यासजी महाराज श्री भद्रंकर विजयजी गणिवर के परिचय द्वारा गिरीशभाई के जीवन की दिशा बदल गई। अध्यात्म का रस जाग उठा। व्यावहारिक शिक्षा में उनके पास तीन उपाधियाँ थी, वे कॉलेज में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। कांदीवली से खार जाते समय सौ तथा वापस आते समय सौ श्लोकों की रचना करते थे। ऐसे कच्चे सोने जैसे सुंदर क्षयोपशम को पंन्यासजी महाराज का जादूभरा स्पर्श हुआ। समय मिलते ही गिरीशभाई पंन्यासजी महाराज के पास पहुँच जाते, पंन्यासजी महाराज ने सोनी की तरह उनके क्षयोपशम का आभूषण में परिवर्तन किया। पंन्यासजी महाराज ने एक विरल आत्मा को अध्यात्म की दिशा देकर उनकी शक्ति सही अर्थ में सन्मार्ग पर लगाई।

सर्जक धूनी होते हैं। उनको दुनिया का तथा दुनियादारी का ज्ञान होता है लेकिन उसके बारे में जागृति कम होती है। उन्हें एकांत और चिंतन बहुत अच्छा लगता है। बाते करना पसंद नहीं होता। इससे उनके संबंध कम होते हैं। जो होते हैं वे भी गहरे नहीं होते। साधारण मनुष्य उनको समझ नहीं सकते। समझ सके तो भी उसे सुरक्षित नहीं कर सकते। आध्यात्मिक बोध तथा बौद्धिक क्षमता के साथ व्यावहारिक संबंध सुरक्षित रखने की कला का समन्वय विरल व्यक्ति ही कर सकता है। उसके लिये विशेष प्रकारका क्षयोपशम चाहिये। अध्यात्मशून्य व्यक्ति के बाह्य संबंध उसके स्व का लाभ नहीं करते, तो अध्यात्मसंपन्न व्यक्ति संबंध के क्षेत्र में जाता है तो दूसरे को जो लाभ होना चाहिए वह नहीं होता। गिरीशभाई आत्मसन्मुख

थे। उनका दर्शनमोहनीय कर्म और ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम जितना मजबूत था उतना चारित्रमोहनीय का नहीं था। अनुकूल या प्रतिकूल कारणों के बीच डटे रहने के लिये सक्षम वीर्यबल चाहिये। श्रद्धा और आत्मबोध, ज्ञान की ज्योति और गुरु की कृपा के आधार पर ही स्थिर होते हैं। गिरीशभाई के पास स्वाध्याय का आत्मबल और पंन्यासजी महाराज का कृपाबल था। इसके अतिरिक्त उनको कल्याणकारी मित्र मिले। उनके साथ शास्त्रों का रस घुंट घुंटकर अनुप्रेक्षा के अमृत की बरसात करते थे। स्वाध्याय के समय 'कैसे हो? कैसे नहीं?' ऐसे उपचार किये बिना ही आत्मा की बाते शुरु कर देते। ये बाते तीन-चार या पाँच घंटे चलती थी। बीच में खाने पिने की छुट्टी नहीं। सामने कोई सुनता है या नहीं उसकी चिंता नहीं थी। अंदर से निकलनेवाला बोध का प्रवाह अटकने पर रुक जाते।

(एकबार किसी महाराज साहब की उपस्थिति में उनको पंन्यासजी महाराज का गुणानुवाद करने जाने का प्रसंग आया। अपने गुरु के गुण गाने की उमंग से उन्होंने रास्ते में ही पंन्यासजी महाराज के बारे में सौ श्लोकों की रचना की। सभा में वह बोलने के लिये खडे हुये, नया ही बनाया हुआ एक श्लोक बोले और महाराज साहब ने उन्हें 'समय नहीं है' ऐसा कहकर नीचे बिठाया। तबसे उन्होंने जाहिरसभा में जाना छोड दिया।)

अपने सहज क्षयोपशम के आधार पर उन्होंने अनेक नवरचनाएँ की। उनकी हर एक रचना आत्मकेंद्री और भावप्रधान है। सरल, सबल और सहज है। इस लेख में उनकी अन्य तीन रचनाओं का अवगाहन करते हैं। उनके नाम है- **आत्मतत्त्वसमीक्षण, नमस्कारपदावली, आशाप्रेमस्तुति।**

आत्मतत्त्वसमीक्षण में आत्मा के शुद्ध स्वरूप का विचार किया गया है। हम सभी अनादि काल से इस संसार में है। हमे अपना संसारी स्वरूप ही पता है। वह भी एक भव तक का। अपना सही और शुद्ध स्वरूप हम नहीं जानते। वैसी जिज्ञासा भी जागृत नहीं हुई। अतः अपने मूल स्वरूप की कल्पना भी हम नहीं कर सकते। मेरी आत्मा कैसी है? मैं राग-द्वेष करता हूँ तब मेरी आत्मा पर क्या बितती है? सुख मिलने पर मैं खुश हो जाता हूँ तब मेरी आत्मा सचमुच खुश होती है क्या? ऐसे विचारों की भूमिका हमारी नहीं है, क्योंकि शरीर और आत्मा अलग है

यह बात हमारे छोटे दिमाग में नहीं उतरती। अपने अस्तित्व में से संसार को घटाया जाए तो अपना स्वरूप कैसा होगा? ऐसे मजेदार विचारों में से आत्मतत्त्वसमीक्षण का जन्म हुआ है। समीक्षण अर्थात् समझदारी से देखना। यहाँ आत्मा की तरफ समझदारी से देखने का प्रयास किया है।

हम मन के इस पार - बुद्धि के प्रदेश में जीते हैं। आत्मा मन के उस पार - श्रद्धा के प्रदेश में है। बुद्धि का साधन विचार यहाँ कम होता है। श्रद्धा के प्रदेश का साधन अनुभव है। अध्यात्मपथ के एकाकी यात्री श्री आनंदघनजी म. कहते हैं- **अनुभव तुं ही हेतु हमारो** अनुभव प्राप्त होने के बाद ही ध्यान उत्पन्न होता है।

ध्यान के द्वारा ही शरीर और आत्मा भिन्न है यह प्रतीति होती है। जब कोई व्यक्ति अपने के शरीर से अपनी आत्मा को अलग देखता है तब वास्तविक रीति से योग (ध्यान)का विधि उत्पन्न होता है।(४५)

मन वश में न हो तो देहात्मभेदज्ञान नहीं होता। मन में राग-द्वेष उछलते हो तो मन आत्मा का विचार कैसे करेगा? राग-द्वेष इत्यादि मन के दोष कहे जाते हैं।(४०)

मन को साधना के अनुकूल बनाने के लिये उसे वैराग्य से वासित करना होगा। शरीर का राग (आसक्ति) और विषयों की ममता मन को थोडे समय के लिये भी स्थिर नहीं रहने देती। इस जहर को उतारने का मंत्र है-मैं (शरीर) नहीं और कोई मेरा(घर-परिवार) नहीं, यह मोक्षमंत्र कहा गया है।(२६)

इस मंत्र के द्वारा मोह पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। मोह पर विजय यानी जानकारी (नॉलेज)रूप ज्ञान प्रतीति (रियलाइझेशन)में बदलता है। इस अवस्था में संसार का सच्चा स्वरूप दिखता है और मोक्षमार्ग की प्रतीति होती है। मार्ग यानी चित्त का अवक्र परिणाम। राग-द्वेष मंद होने पर ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है। तब सभी चिंताओं का त्याग कर मन अंतर्मुख बन जाता है और विषयों पर प्रेम न रहने पर तत्त्व का प्रकाश प्राप्त होता है।(३५)

इस ज्ञान की सहाय से जो वैराग्य उत्पन्न होता है वह ज्ञानगर्भित होता है, ज्ञानगर्भित वैराग्य ही त्याग की शक्ति और मोक्ष की इच्छा का जन्मदाता है। आत्मज्ञान

से ज्ञानगर्भित वैराग्य प्राप्त होता है। ज्ञानगर्भित वैराग्य प्राप्त होने पर विषयों का त्याग करके मन मुक्ति की इच्छा करता है।(२)

आत्मा का ज्ञान हुआ है ऐसे मन की विशेषता क्या? जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ है वह व्यक्ति क्षुद्र विचार कभी भी नहीं करता, चित्त की क्षुद्रता का त्याग करता है।(७) क्षुद्र विचार यानी हलके और नकामी विचार। आत्मा सिवाय के सभी विचार ही है ना? सात्विक विचार अजब बल देते हैं। सतत, स्थिरतापूर्वक और सन्मानपूर्वक सात्विक विचार करते रहने से संसार का आकर्षण कम होता है। धीरे-धीरे संसार को भूलाने की प्रक्रिया शुरु होती है। विषय-कषाय कम होते जाते है। मन खिलने लगता है। इस तरह विशुद्ध हुआ मन आत्मा तक ले जाता है। क्रम से अभ्यास द्वारा आत्मनिष्ठ योगी के बाह्य भाव के संबंधी स्मरण कम होता जाता है। उसका मन शून्य बनता है।(४३)

(मन की) चिंता और (शरीर की) चेष्टा का त्याग करने से अनायास खुद के स्वरूप में ले जाता है। उससे शुभ-अशुभ कर्मों का क्षय होता है।

नमस्कार पदावली नाम की कृति में आठ रचनाओं का समावेश होता है। **नमस्कारस्तुति, नमस्कारस्तव, नमस्कारनिरूपण, नमस्कारनुति, नमस्कारकीर्तन, नमस्कारफल, नमस्कारविवेचन और नमस्कारस्मृति।** प्रत्येक रचना में पचास-पचास श्लोक है। इस प्रकार कुल चारसौ श्लोकों में श्री नवकार महामंत्र का महिमागान यहाँ हुआ है।

पंन्यासजी महाराज का नवकारप्रेम सर्वविदित है। नमस्कार पदावली में उसका सुरेख प्रतिबिंब झलकता है। मध्यकाल में ऐहिक प्रभाववाले मंत्रतंत्र का बहुत प्रचलन हुआ। मोक्ष देनेवाले नवकार का उपयोग ऐहिक फल के लिये होने लगा। नवकारमंत्र के तांत्रिक प्रयोग भी होने लगे। उसके अध्यात्मिक शक्ति का विस्मरण होने लगा। इसका असर उत्तरकाल पर पडा। नवकार की ऐहिक महिमा ही बहुत गायी गयी। इस स्थिति में नवकार आत्मा और मोक्ष के लिये है यह बात प्रभावपूर्वक प्रस्तुत करनेवाली कृतियाँ बहुत कम मिलती है। उसमें नमस्कार पदावली को स्थान दे सकते है। नमस्कार पदावली में नवकार का आध्यात्मिक चमत्कार ही प्रधानता से प्रस्तुत किया है।

इस संसार में हर एक प्रकारका ऐश्वर्य मिलता है। नवकार से निर्वाण मिलता है।(१-२)

हृदय में वैराग्य धारण कर, पौद्गलिक सुख को छोडकर भाव से नवकार का जाप करने से मोक्ष मिलता है।(२-३१)

नवकार गुरुमुख से लेने पर ही फलदायी बनता है। गुरुमुख से लिया हुआ नवकार सवीर्य होता है।(१-४६,२-२,४-३,८-२)

नवकार से दुर्ध्यान का नाश होता है, मन निश्चल बनता है, ज्ञानयोग सिद्ध होता है।(३-५, १३, २३)

नवकार के द्वारा आत्मसाधना के मार्गपर आगे किस तरह से बढना, उसका ज्ञान अपने आप होता है। उसके लिये चित्त शुद्ध होना चाहिए।(५-३)

नमस्कारस्तुति में नवकार की सामान्य और विशेष महिमा है। नवकारस्तव में नवकार का स्मरण करने की प्रेरणा है। तंत्रशास्त्र और हठयोग की दृष्टि से नवकार का ध्यान करने की आसान रीति इसमें दर्शाई है। नमस्कारनिरूपण में नवकार से क्या क्या हो सकता है वह दिखाया है। नमस्कारनुति में नवकार के गुणों का वर्णन करके नमस्कार करने में आया है।

नवकार में गुरु के आत्मा का अंश होता है।(२४)

आत्मसाधना के क्षेत्र में आवश्यक पात्रता का विकास करने में नवकार किस तरह सहायभूत होता है, उसका वर्णन **नमस्कारकीर्तन** में है।

स्वर्ग वगैरे की इच्छा छोडकर नवकार का ध्यान करने से पापों से मुक्ति मिलती है।(३२)

नमस्कारफल में स्वाभाविक रीति से ही नवकार के बाह्य और आंतरिक फल का वर्णन है।

आत्मा का विचार, आत्मतत्त्व का बोध, आत्मानुभव की प्राप्ति, आत्मा का स्फुरण नवकार का फल है।(१०,१७,२०,३२)

नवकार जीवन में आनेपर आत्मिक परिवर्तन का अनुभव होता है। उसका वर्णन **नमस्कारविवेचन** में है। **नमस्कारस्मृति** में नवकार के उपलक्ष में उसे साकार

रूप देकर स्तुति की है। नवकार का ज्ञानात्मक, योगात्मक और भावात्मक निरूपण एकसाथ नमस्कारपदावली में देखने मिलता है।

आशाप्रेमस्तुति तंत्रदृष्टि से कुंडलिनी शक्ति की महिमा गानेवाली स्तुति है, ऐसा कर्ता का कहना है। गिरीशभाई के अन्य कृतियों की तुलना में यह कृति अलग प्रतीत होती है। तंत्र में कुंडलिनी को स्त्री की उपमा देकर उसकी महिमा गाई है। इसमें सराग और कभी तो अश्लीलप्रायः वर्णन होता है। यह जैन साधनाप्रक्रिया के अनुकूल नही है। योगप्रक्रिया के संदर्भ में हठयोग की तुलना में राजयोग सामान्य साधकों को बहुत अनुकूल लगता है। योगायोग से गिरीशभाई के पत्नी का नाम भी आशा था। अतः भ्रम होने की संभावना ज्यादा है।

इस कृति का नाम **'योगकल्पलता'** हमने रखा है, क्योंकि यह संकलन गिरीशभाई की तीन कृतियों के त्रिवेणी संगमरूप है और मुक्ति संगमरूप अमृतफल प्रदान करनेवाली कल्पवल्ली समान है। योगाचार्यों ने मोक्ष के सम्बन्ध को ही योग कहा है। आन्तरिक क्लिष्ट चित्तवृत्तियों को पवित्र करनेवाले शुभ विचार गिरीशभाई की कृतियों में पद-पद में दृष्टिगोचर होते हैं। अतः यह नाम सार्थक प्रतीत होता है। (वैसे कर्ता के उपनाम का अंश भी इसमें समाहित है।) ऐसी उत्तम आध्यात्मिक रचना वर्तमान काल में हो रही है और उसका आस्वाद लेनेवाला वर्ग भी है यह जैनशासन के लिये गौरवपूर्ण बात है।

– वैराग्यरतिविजय

अनुक्रम

विषय	पत्र
नमस्कारस्तुतिः	१
नमस्कारस्तवः	१०
नमस्कारनिरूपणम्	१९
नमस्कारनुतिः	२८
नमस्कारकीर्तनम्	३७
नमस्कारफलम्	४६
नमस्कारविवेचनम्	५५
नमस्कारस्मृतिः	६४
नमस्काराष्टकम्	७३
आत्मतत्त्वसमीक्षणम्	७५
आशाप्रेमस्तुतिः	८७
परिशिष्ट–१ आत्मतत्त्वसमीक्षणम् गुजराती अनुवाद	१०८
परिशिष्ट–२ आत्मतत्त्वसमीक्षणम् अंग्रेजी अनुवाद	११३
परिशिष्ट–३ आशाप्रेमस्तुतिः अंग्रेजी अनुवाद	१२०

नमस्कारपदावली

।।समर्पणम्।।

नमस्कारमयं येषां जीवनं पावनं परम्।
नत्वा समर्प्यते तेभ्यो नमस्कारपदावली।।

जिनका पावन जीवन नमस्कार महामंत्रमय था,
उस महापुरुष को नमस्कार करके
यह नमस्कार पदावली समर्पित करता हूँ।

।।नमस्कारस्तुतिः।।

नत्वा वीरं गुरुं भक्त्या जननीं जनकं तथा।
रच्यते स्वात्मबोधाय नमस्कारस्तुतिर्मया।।१।।

भगवान् महावीर को गुरु को एवं माता पिता को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके अपनी आत्मा के बोध हेतु नमस्कारस्तुति की रचना करता हूँ।।१।।

संसारे प्राप्यते सर्वमैश्वर्यं विपुलं पुनः।
प्राप्यते येन निर्वाणं नमस्कारो न प्राप्यते।।२।।

इस संसार में सभी प्रकार के ऐश्वर्य विपुल प्रमाण में मिलते हैं किन्तु मोक्ष को देनेवाला एक नमस्कार मन्त्र नहीं मिलता है।।२।।

शाश्वती रचना यस्य सर्वकर्मापहारिणी।
महामन्त्रः स एवैको नमस्कारोऽतिदुर्लभः।।३।।

जिसकी रचना शाश्वती है, जो सभी कर्मों को क्षय करनेवाला है ऐसा एकही महामन्त्र नमस्कार है जो अतिदुर्लभ है।।३।।

भवान्तरकृतासङ्ख्यपुण्यैर्भव्यैस्तु लभ्यते।
चिन्तामणिरचिन्त्योऽयं नमस्कारो हि वस्तुतः।।४।।

वस्तुतः दूसरे भव में कियें हुए असंख्य पुण्य से यह अचिन्त्य चिन्तामणि के समान नमस्कार मन्त्र भव्यों को ही मिलता है।।४।।

तपःसिद्धिमहं मन्ये भव्यानां पुण्यशालिनाम्।
ययैव प्राप्यते भावान्नमस्कारोऽयमद्भुतः।।५।।

जिन्होंने तप करके सिद्धि प्राप्त की है ऐसे ही पुण्यशाली भव्य को यह अद्भुत महामन्त्र प्राप्त होता है।।५।।

जिनागमेषु सर्वेषु व्यापकोऽयं सनातनः।
ध्येयतमो हि सम्प्रोक्तो नमस्कारो बहुश्रुतैः।।६।।

सभी जिनागमों में यह सनातन नमस्कार मन्त्र व्याप्त है तथा शास्त्रज्ञों ने इसे ध्येयतम (ध्येय मन्त्रों में सर्वोत्कृष्ट) कहा है।।६।।

एको हि सुभटो लोके कामक्रोधविदारकः।
मोक्षलक्ष्मीजये शक्तो नमस्कारो निरीक्ष्यते।।७।।

इस लोक में कामक्रोध रूप शत्रुओं को नाश करनेवाला तथा मोक्षलक्ष्मी को जीतने में समर्थ एक ही योद्धा (सुभट) नमस्कार महामन्त्र देखा जाता हैं।।७।।

देवगुरुपदैः सम्यग् रागद्वेषविनाशनात्।
प्रदत्ते समताधर्मं नमस्कारो विशेषतः।।८।।

देवगुरु की कृपा से तथा रागद्वेष का समूल नाश होने से यह मन्त्र विशेषतः समता प्रदान करता है।।८।।

रत्नत्रयात्मको ज्ञेयो मन्त्रस्तत्त्वत्रयात्मकः।
त्रिसन्ध्यं सेवनीयश्च नमस्कारोऽतिप्रेमतः।।९।।

इस मन्त्र को रत्नत्रय (सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र) का एकाकार रूप तथा तत्त्वत्रय (देव, गुरु, धर्म) स्वरूप जानना चाहिए। यह नमस्कार मन्त्र प्रेम से (शुद्धभाव से) तीनों सन्ध्या (प्रातः, दिवा, सायंकाल) में उपासना करने योग्य है।।९।।

जिनबोधिप्रदानेन दत्ते मुक्तिश्रियं क्षणात्।
मुक्तकरो निसर्गेण नमस्कारो न निष्फलः।।१०।।

यह नमस्कार महामन्त्र स्वभाव से ही मुक्त करनेवाला होता है। इसकी उपासना कभी निष्फल नहीं होती; जिनवचन के अनुसार सम्यक्त्व आजाने से तुरंत ही मोक्षश्री को देनेवाला महामन्त्र है।।१०।।

शरण्यैर्मङ्गलैश्चैव पदैर्लोकोत्तमैस्तथा।
अद्वितीयस्तु लोकेऽस्मिन्नमस्कारो व्यवस्थितः।।११।।

शरणागत की रक्षा करने से, मङ्गल करने से तथा लोक में उत्तमस्थान होने से यह नमस्कार महामन्त्र इस लोक में अद्वितीय है।।११।।

पञ्चबीजमयो मन्त्रः पञ्चतत्त्वसमन्वितः।
पञ्चबाणविनाशाय नमस्कारोऽत्र सूचितः।।१२।।

पञ्च तत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) का समन्वय तथा पाँच बीज (ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः) वाला यह नमस्कार मन्त्र काम को नाश करता है।।१२।।

पञ्चवर्णमयो मन्त्रः पद्मे त्वष्टदलात्मके।
ध्यायते कर्मनाशाय नमस्कारो बुधैः सदा।।१३।।

यह मन्त्र पाँच वर्णवाला है पंडित लोक अपने कर्मों के क्षय के लिए इसे अष्टदल कमल पर ध्यान करते हैं।।१३।।

अष्टसिद्धिप्रदो ह्येष चाष्टकर्मविनाशकः।
सम्पदष्टकसंयुक्तो नमस्कारो निरूपितः।।१४।।

आठ प्रकार की सिद्धियों को देनेवाला आठ प्रकार के कर्मों का क्षय करनेवाला आठ प्रकार की सम्पत्तियों से युक्त नमस्कार मन्त्र को कहा गया है।।१४।।

नवपदात्मको ज्ञेयस्तथा नवरसात्मकः।
ग्रहान्वितो विनिर्दिष्टो नमस्कारो निधिप्रदः।।१५।।

इस को नौ पदवाला, नौ रसवाला तथा नौ ग्रहों से युक्त जानना चाहिए (अर्थात् सम्पूर्ण चराचर जगत्) इस नमस्कार मन्त्र को नवों निधि का प्रदाता कहा गया है।।१५।।

बिन्दूनां नवके चित्तं स्वयमेव विलीयते।
अतिसूक्ष्मो यदा मन्त्रो नमस्कारो भवेत्तदा।।१६।।

ध्यान की स्थिति में जब नमस्कार मन्त्र अति सूक्ष्म हो जाता है तब यह चित्त में स्वयं ही लीन हो जाता है।।१६।।

नैष साधारणो मन्त्रः सर्वमन्त्रशिरोमणिः।
निष्प्रतिमप्रभावोऽयं नमस्कारो विलोक्यते।।१७।।

यह कोई साधारण मन्त्र नहीं है। यह मन्त्रों का राजा है। इस नमस्कार का अद्वितीय प्रभाव देखा जाता है।।१७।।

कथानकेषु सम्प्रोक्तं पूर्वाचार्यैः पुनः पुनः।
''भुक्तिमुक्तिप्रदो ह्येष नमस्कारो न संशयः''।।१८।।

पूर्वाचार्यों के द्वारा बार-बार कथानकों में दोहराया गया हैं कि यह नमस्कार मन्त्र निस्सन्देह भोग और मुक्ति देनेवाला है।।१८।।

सर्वाभिप्रेतसिद्ध्यर्थं दर्शितो हि गुणाधिपैः।
कन्दोऽयं सर्वधर्माणां नमस्कारोऽस्तु मे श्रिये।।१९।।

तीर्थंकरों ने जिसे सभी धर्मों का मूल तथा सभी मनोवाञ्छित सिद्धि करनेवाला कहा है वह नमस्कार मेरे कल्याण के लिए हो।।१९।।

सर्ववन्द्यो भवेद्ध्याता मन्त्रराजप्रभावतः।
तस्माद्भव्यैः सदा ध्येयो नमस्कारो मुहुर्मुहुः।।२०।।

मन्त्रराज के प्रभाव से ध्यान करने वाले सभी के वन्द्य होते हैं, अतः भव्यों को बार-बार नमस्कार मन्त्र का ध्यान करना चाहिए।।२०।।

देवेन्द्रविभवो लोके चक्रित्वमानुषङ्गिकम्।
अचिन्त्यं हि फलं दत्ते नमस्कारो निषेवितः।।२१।।

इस लोक में सेवा करने से इन्द्र के समान विभव एवं आनुसंगिक रूप में चक्रवर्ति पद ऐसे अचिन्त्य पद नमस्कार मन्त्र देता है।।२१।।

सेवितोऽयं ददात्येव पदं लोकोत्तरं ध्रुवम्।
तस्मादेव हृदि ध्येयो नमस्कारो दिवानिशम्।।२२।।

इसकी सेवा करने से यह निश्चित ही लोकोत्तर पद (मोक्ष) देता है। इसलिए रातदिन नमस्कार मन्त्र का हृदय में ध्यान करना चाहिए।।२२।।

यस्मादध्यात्मविद्यानां सर्वासामुद्गमो मतः।
भव्यैस्तु सेवनीयः स नमस्कारो मुदा सदा।।२३।।

जिससे (जिसके सेवनसे) सभी अध्यात्म विद्याओं की उत्पत्ति हुई है, भव्यों को सतत प्रसन्नता पूर्वक उस महामन्त्र का सेवन करना चाहिए।।२३।।

सर्वेषां योगमार्गाणां मूलं यस्मिन् समाहितम्।
मोक्षोपायः स विज्ञेयो नमस्कारोऽतुलः सदा।।२४।।

सभी योगमार्गों का मूल जिसमें समाहित है, उस अद्वितीय नमस्कार मन्त्र को सदा मोक्ष का उपाय (मोक्षदायक) समझना चाहिए।।२४।।

ध्यानं तु दृश्यते यस्मिन् पिण्डस्थादिचतुर्विधम्।
स एको हि महामन्त्रो नमस्कारो ननूत्तमः।।२५।।

चारों प्रकार के पिण्डस्थ ध्यान से (श्वेत किरण युक्त केवली तुल्य आत्मस्वरूप, तेज स्फुरित अर्हत् स्वरूप, नाभि वगैरह में तीन लोक के स्वरूप का ध्यान, शरीरस्थित आत्म स्वरूप का ध्यान) पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ रूपातीत जिसमें देखे जाते हैं वह एक ही उत्तम महामन्त्र नमस्कार है।।२५।।

योगः सर्वोत्तमो ह्येष साधकैरुत्तमोत्तमैः।
सर्वसङ्गपरित्यागान्नमस्कारो हि सेव्यते।।२६।।

यह सर्वोत्तम योग है उत्तम साधक के सर्वपरित्याग (वैराग्यभाव) से नमस्कार मन्त्र की सेवा करते है।।२६।।

मोक्षाङ्गं परमं प्रोक्तं यत्सर्वज्ञैर्जिनेश्वरैः।
तत्समत्वं क्षणादेव नमस्कारो ददाति वै।।२७।।

सर्वज्ञ जिनेश्वरों ने इसे उत्कृष्ट मोक्ष का अङ्ग कहा है। नमस्कार क्षणभर में ही समता भाव देता है।।२७

योगीन्द्रहृदये गर्जन्नादो नित्यमनाहतः।
सेव्यते सततं लोके नमस्कारो मुमुक्षुभिः।।२८।।

लोक में योगियों के हृदय में अबाधित रूप से गर्जन करता हुआ यह नाद नमस्कार मन्त्र है जो लोक में मुमुक्षुओं के द्वारा सदा उपासित हैं।।२८।।

शिथिला यस्य नादेन कर्मबन्धा भवन्ति वै।
विदधातु स मन्त्रो मे नमस्कारो हि वाञ्छितम्।।२९।।

जिसके नाद से कर्मबन्ध शिथिल होते हैं वह नमस्कार महामन्त्र मेरी अभिलाषा पूरी करे।।२९।।

मोक्षैकबद्धलक्ष्यैस्तु सदा स्वप्नेऽपि साधकैः।
तद्गतमानसेनायं नमस्कारो हि जप्यते।।३०।।

जिस साधक का एकमात्र लक्ष्य मोक्ष है उनके द्वारा स्वप्न में भी मन से नमस्कार मन्त्र जपा जाता है।।३०।।

निर्धार्य हृदि वैराग्यं त्यक्त्वा पौद्गलिकं सुखम्।
भव्यैस्तु जप्यते भावान्नमस्कारो विमुक्तये।।३१।।

शारीरिक सुखों को छोडकर हृदय में वैराग्य को दृढ करके भव्य मुक्ति (मोक्ष) के लिए भाव से नमस्कार का जप करते हैं।।३१।।

तस्य मोक्षो भवेन्नैव तपोव्रतजपादिभिः।
सर्वथा हृदये यस्य नमस्कारो न विद्यते।।३२।।

तप-जप-व्रत आदि से कभी भी उसका मोक्ष नहीं होता जिसके हृदय में नमस्कार नहीं है। अर्थात् जो नमस्कार का ध्यान नहीं करता है, उसका मोक्ष नहीं होता है।।३२।।

अन्ते पूर्वधरैः सर्वैः सर्वमन्यद्विहाय वै।
कृत्वा प्राणसमो मन्त्रो नमस्कारो विचिन्त्यते।।३३।।

अन्य सभी जप-तप को छोडकर अन्त समय में पूर्वधर नमस्कार मन्त्र को प्राणसम मानकर ध्यान करते हैं।।३३।।

हृदयाह्लादको लोके योगीन्द्राणां प्रतिक्षणम्।
पातु मां मन्त्रराजः स नमस्कारो भवार्णवात्।।३४।।

लोक में योगीन्द्रो के हृदय को सतत आह्लाद देनेवाला जो मन्त्रराज है वह नमस्कार महामंत्र भवसागर से मेरी रक्षा करें।।३४।।

उपद्रवा विनश्यन्ति तदा सर्वेऽपि दूरतः।
करावर्तैर्यदा मन्त्रो नमस्कारो विभाव्यते।।३५।।

यदि हाथ के आवर्तों द्वारा विशेषभाव से नमस्कार किये जाय तो सभी उपसर्गों (उपद्रवों) का दूर से ही शमन हो जाता है।।३५।।

विघ्नानां प्रतिषेधाय गीयमानो मुमुक्षुभिः।
नयत्येव द्रुतं सर्वान्नमस्कारोऽचलं पदम्।।३६।।

विघ्नों को रोकने के लिये मुमुक्षुओं के द्वारा स्तुति करने से शीघ्र ही यह नमस्कार महामन्त्र अचलपद (मोक्ष) देता है।।३६।।

मोक्षमार्गे तु योगीन्द्रैर्महाध्वान्तोपशान्तये।
अविद्यातिमिरार्कोऽयं नमस्कारोऽवलम्ब्यते।।३७।।

योगी लोग मोक्षमार्ग में अज्ञानतारूप अन्धकार को दूर करने के लिए अविद्यारूप अन्धकार को दूर करने में सूर्य के समान इस नमस्कार महामन्त्र का अवलम्ब (सहारा) लेते हैं।।३७।।

परीषहोपसर्गेषु मनःस्थैर्यं ददाति यः।
सर्वभीतिहरो ध्येयो नमस्कारो विचक्षणैः।।३८।।

परिषह या उपसर्ग आने पर जो मन को चलायमान नहीं होने देता तथा जो सभी प्रकार के भय को दूर करनेवाला है ऐसा नमस्कार मन्त्र का ध्यान विद्वानों को करना चाहिए।।३८।।

मोक्षमार्गे प्रवृत्तानां सर्वविघ्ननिवारकः।
सप्रभावो हि मन्त्रोऽयं नमस्कारो विलक्षणः।।३९।।

मोक्षमार्ग में प्रवृत्त साधक की सभी बाधाओं को दूर करनेवाला यह प्रभावशाली मन्त्र; ये नमस्कार (वास्तव में) विलक्षण है।।३९।।

आर्तरौद्रविनाशाय धर्मशुक्लसुसिध्दये।
धार्यते हृदये भव्यैर्नमस्कारो निरन्तरम्।।४०।।

आर्तध्यान तथा रौद्र ध्यान के नाश तथा धर्मध्यान-शुक्लध्यान की सिद्धि के लिए भव्य लोग निरन्तर इस नमस्कार को हृदय में रखते हैं; अहर्निश उसका ध्यान करते हैं।।४०।।

जिनशासनसारोऽयं भव्यजीवैरुपास्यते।
विभूतयेऽपवर्गस्य नमस्कारो यथाविधि।।४१।।

यह नमस्कार मन्त्र जिनशासन का सार है। भव्यजीव मोक्षरूपी विभूति प्राप्ति के लिए विधिपूर्वक इसकी उपासना करते हैं।।४१।।

चिन्तितो मनसा नूनममोघः किं न साधयेत्।
तस्मादेव सदा ध्येयो नमस्कारो विभावितः।।४२।।

मन से चिन्तित लोग चिन्तामिटाने में सफल अस्त्ररूप नमस्कार की साधना क्यों न करें? अतएव विशेषभाव से यह नमस्कार मन्त्र का ध्यान करना चाहिए।।४२।।

ब्रह्मज्योतिर्मयो मन्त्रः सर्वतेजोमयस्तथा।
विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु नमस्कारो हि सर्वदा।।४३।।

हर समय यह नमस्कार महामन्त्र शाश्वत ज्योतिवाला है जिसमें तीनों लोक में प्रख्यात सभी तेज हैं।।४३।।

सर्वदुःखहरो मन्त्रः सर्वसौख्यप्रदो ध्रुवम्।
वाचको वन्दनीयानां नमस्कारो हि तारकः।।४४।।

निश्चित ही यह मन्त्र सभी दुःखों को दूर करके सभी सुखों को देनेवाला है। वन्दनीयों का वाचक है यही नमस्कार मन्त्र तारण करनेवाला है।।४४।।

सर्वगुणाकरो ज्ञेयः सर्वदेवैः सुसेवितः।
स्वात्मबोधप्रदो ह्येष नमस्कारोऽस्तु सिद्धये।।४५।।

सभी देवों द्वारा सेवित, सभी गुणों की खान सभी को ज्ञेय एवं आत्मज्ञान करानेवाला यह नमस्कार सिद्धि के लिए हो।।४५।।

सेवनीयः सवीर्यो हि मनःप्राणात्मयोगतः।
लब्ध्वाऽयं विधिना मन्त्रो नमस्कारो गुरोर्मुखात्।।४६।।

गुरुमुख से विधिपूर्वक मन्त्र ग्रहण करके (दीक्षा लेकर) मन और आत्मा को एक करके (विचार मुक्त होकर) मोक्ष का मूल कारण नमस्कार मन्त्र का सेवन करना चाहिए।।४६।।

ध्यानादात्मप्रकाशं यः शिवश्रियं च यच्छति।
योगिभिः स सदा स्वान्ते नमस्कारो निषेव्यते।।४७।।

ध्यान करने से आत्म प्रकाश और मोक्ष देता है ऐसे नमस्कार मन्त्र को योगीलोग सदा अपने अन्तःकरण में रखते हैं; अर्थात् सतत ध्यान करते हैं।।४७।।

समर्थो वज्रवत्सद्यः सर्वकर्माद्रिभेदने।
शरण्यः खलु सर्वेषां नमस्कारो हि पातु माम्।।४८।।

पर्वत के समान कठोर कर्मों को वज्र के समान सद्यः भेदन करने वाले, सभी को शरण देनेवाला नमस्कार मेरी रक्षा करें।।४८।।

जीवितं सफलं नूनं लोके तेषां महात्मनाम्।
येषां विश्वोपकाराय नमस्कारो हृदि स्थितः।।४९।।

लोक में उन महापुरुषों का जीवन निश्चित ही सफल है जिन्होंने लोकोपकार के लिए नमस्कार को हृदय में धारण किया है।।४९।।

गुरोर्भद्रङ्कराख्यस्य पन्न्यासपदधारिणः।
प्रसादाद्रचिता ह्येषा नमस्कारस्तुतिर्मया।।५०।।

मेरे गुरु पंन्यास श्री भद्रङ्करविजय जी हैं जिनकी कृपा से मेरे द्वारा यह नमस्कार स्तुति रची गयी।।५०।।

।।नमस्कारस्तवः।।

नत्वा वीरं गुरुं भक्त्या जननीं जनकं तथा।
नमस्कारस्तवं कुर्वे महामङ्गलदायकम्।।१।।

भक्तिपूर्वक भगवान् महावीर को, गुरु को, एवं माता पिता को नमस्कार करके महामङ्गल देनेवाले नमस्कारस्तव की रचना करता हूँ।।१।।

संसारे दुःखपूर्णेऽस्मिन् सुखं प्राप्तुमकृत्रिमम्।
गुरुभक्त्या समासाद्य नमस्कारं सदा स्मर।।२।।

इस दुःख से भरे हुए संसार में शाश्वत और स्वाभाविक सुख प्राप्त करने के लिए गुरु की भक्ति करके नमस्कार मन्त्र प्राप्त करके उसका सदा स्मरण करें।।२।।

अनादिनिधनं मन्त्रं सर्वकल्याणकारकम्।
सुखे दुःखे दिवा रात्रौ नमस्कारं सदा स्मर।।३।।

यह मन्त्र अजन्मा और अमर है, यह सभी का कल्याण करनेवाला है अतः सुख दुःख सभी अवस्थाओं में इसका रात-दिन सदा स्मरण करें।।३।।

सर्वदेवमयं मन्त्रं सर्वध्यानमयं तथा।
सर्वज्ञानमयं चैव नमस्कारं सदा स्मर।।४।।

इस मन में सभी देवताओं का वास है यह मन्त्र सभी ध्यान एवं सर्वज्ञान रूप है अतः नमस्कार का स्मरण करो।।४।।

सर्वशक्तिमयं मन्त्रं देवदेवैरधिष्ठितम्।
सर्वतत्त्वमयं शीघ्रं नमस्कारं सदा स्मर।।५।।

देवों के देव (जिनेश्वर) द्वारा नियंत्रित सर्वशक्तिमय सभी तत्त्वों से भरे हुए इस नमस्कार महामन्त्र का शीघ्र ही स्मरण कर।।५।।

सर्वभावमयं भव्यं मन्त्रं सर्वरसात्मकम्।
सर्वगुणास्पदं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।६।।

सभी भावों से युक्त, सभी रसों से निर्मित सभी गुणों का एकमात्र स्थान यह मन्त्र भव्य (सुन्दर) है, अतः इस नमस्कार मन्त्र का सदा स्मरण कर।।६।।

सर्वपुण्यकरं मन्त्रं सर्वपापहरं तथा।
महाप्रभावसंयुक्तं नमस्कारं सदा स्मर।।७।।

सभी पापों को नाश करनेवाला, सभी पुण्यों को करनेवाला (बढाने) वाला महाप्रभाव से युक्त सतत इस नमस्कार मन्त्र को स्मरण कर।।७।।

तन्त्रसारं महामन्त्रं सर्वकर्मकरं तथा।
सर्वसिद्धिप्रदं लोके नमस्कारं सदा स्मर।।८।।

यह महामन्त्र सभी शास्त्रों का सार है सभी (शुभ) कर्मों का कारक है, लोक में सभी प्रकार की सिद्धियों को देनेवाला है अतः तुम इस नमस्कार मन्त्र का स्मरण करो।।८।।

सर्वाभीष्टप्रदं मन्त्रं सर्वाभ्युदयसाधकम्।
महाप्रभावकं भावान्नमस्कारं सदा स्मर।।९।।

मनोवाञ्छित फल देनेवाला, सभी अभ्युदयों का साधक यह अत्यन्त प्रभावशाली मन्त्र है अतः भाव से सदा नमस्कार का स्मरण कर।।९।।

पूर्वसारयुतं मन्त्रं भाषितं श्रीजिनैश्वरैः।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु नमस्कारं सदा स्मर।।१०।।

श्री जिनेश्वर के द्वारा कहा गया यह मन्त्र (चौदह) पूर्व का सार है। यह तीनों लोकों में विख्यात है इसलिए नमस्कार का स्मरण कर।।१०।।

माहात्म्यं खलु विज्ञाय पूर्वाचार्यैः प्रदर्शितम्।
दृढभावैर्महाभक्त्या नमस्कारं सदा स्मर।।११।।

पूर्वाचार्यों के द्वारा कहे गये इसकी महिमा को जानकर दृढभाव से अत्यन्त श्रद्धापूर्वक नमस्कार का स्मरण कर।।११।।

मोक्षैकसाधनत्वात्तु हृदि संस्थाप्य भावतः।
सर्वकर्मविनाशाय नमस्कारं सदा स्मर।।१२।।

मोक्ष का एकमात्र साधन होने से इसे भाव से हृदय में स्थापित करके सभी कर्मों के क्षय के लिए सदा नमस्कार का ध्यान कर।।१२।।

ध्यानतन्त्रं महामन्त्रमर्थतः कथितं जिनैः।
निधानं सर्वविद्यानां नमस्कारं सदा स्मर।।१३।।

जिनेश्वरों ने अर्थ से महामन्त्र को ध्यान का तन्त्रशास्त्र एवं सभी विद्याओं का भंडार कहा है अतः सदा नमस्कार का ध्यान कर।।१३।।

ब्रह्मतत्त्वावबोधाय चेदिच्छा तव वस्तुतः।
त्यक्त्वा त्वमन्यमन्त्राँस्तु नमस्कारं सदा स्मर।।१४।।

वास्तविक रूप में तेरी ब्रह्मतत्त्व को जानने की इच्छा है, तो शीघ्र ही अन्य सभी मन्त्रों को छोडकर नमस्कार का ध्यान कर।।१४।।

चित्तशुद्धिकरं मन्त्रं जिनभावप्रदायकम्।
गुह्याद्गुह्यतरं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।१५।।

चित्त को शुद्ध करनेवाला एवं जिनशासन में प्रेम करनेवाला यह गुप्त से भी गोपनीय मन्त्र नमस्कार का सदा ध्यान कर।।१५।।

समतालक्षणं मन्त्रं रागद्वेषप्रणाशकम्।
सूक्ष्माराधनरूपं तं नमस्कारं सदा स्मर।।१६।।

रागद्वेष को मिटानेवाला समता गुण से युक्त सूक्ष्म आराधनरूप उस नमस्कार मन्त्र का ध्यान कर।।१६।।

सम्प्रदायेषु सर्वेषु मान्यं सर्वविचक्षणैः।
अन्तर्यागसमायुक्तं नमस्कारं सदा स्मर।।१७।।

सभी बुद्धिमानों के द्वारा सभी सम्प्रदायों में यह मान्य है विद्वानों ने इसे अन्तर्याग (मानसिक यज्ञ-ध्यान आदि क्रिया) का कारण कहा है अतः तू सदा नमस्कार का ध्यान कर।।१७।।

साधनाक्रमसंयुक्तं परमेष्ठिगुणाकरम्।
अद्वितीयमतर्क्यं च नमस्कारं सदा स्मर।।१८।।

परमेष्ठी (परमात्मा) के गुणों की खान अनुष्ठान करनेयोग्य निस्सन्देह यह अद्वितीय मन्त्र है; ऐसे नमस्कार मन्त्र का ध्यान कर।।१८।।

महिम्नो वर्णनं यस्य गणाधिपैर्न शक्यते।
अचिन्त्यशक्तिसंयुक्तं नमस्कारं सदा स्मर।।१९।।

जिसकी महिमा का वर्णन गणाधिप (गणधर) भी नहीं कर सकते ऐसे अकल्प्य शक्ति से सम्पन्न नमस्कार का ध्यान कर।।१९।।

नियमाद्भव्यजीवानां मोक्षविघ्नविनाशकम्।
सत्वरं सर्वभावेन नमस्कारं सदा स्मर।।२०।।

नियम से ध्यान करने से भव्य जीवों को मोक्षप्राप्ति में आनेवाले विघ्नों को यह शीघ्र ही नाश करता है अतः सर्वभाव (समर्पणभाव) से निरन्तर नमस्कार का ध्यान कर।।२०।।

ज्ञानक्रियाद्वयोपेतं निर्जरासंवरात्मकम्।
तत्त्वबोधकरं क्षिप्रं नमस्कारं सदा स्मर।।२१।।

यह ज्ञान और क्रिया से युक्त है, निर्जरा और संवररूप है शीघ्र ही तत्त्वबोध करानेवाला है अतः सदा नमस्कार का ध्यान कर।।२१।।

स्वात्मबोधप्रदं शीघ्रमहङ्कारनिरोधकम्।
ममतानाशकं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।२२।।

शीघ्र ही आत्मज्ञान करानेवाला अहंकार को रोककर ममता को नाश करनेवाला यह मन्त्र है अतः सदा नमस्कार का ध्यान कर।।२२।।

आधारं सर्वलोकानां वाचकं परमेष्ठिनाम्।
अष्टसिद्धिप्रदं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।२३।।

सभी लोकों का आधार, परमेष्ठियों का परिचायक (बोधक) तथा अष्टसिद्धि देनेवाला नमस्कार का सदा स्मरण कर।।२३।।

पररूपानुसन्धानात्परमानन्ददायकम्।
सारात्सारतरं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।२४।।

पररूप के अनुसन्धान से परमानन्द को देनेवाला अन्य सार से सारतर (श्रेष्ठतर) इस नमस्कार मन्त्र का सदा स्मरण कर।।२४।।

मोक्षमार्गे प्रवृत्तानां भावमङ्गलमुत्तमम्।
परीषहोपसर्गेषु नमस्कारं सदा स्मर।।२५।।

परिषह और उपसर्गों के समय में, मोक्षमार्ग की ओर बढनेवालों (मुमुक्षुओं) की रूचि बढाने के लिये उत्तम भावमंगलरूप नमस्कार मन्त्र का ध्यान कर।।२५।।

असङ्ख्ययोगमार्गाणां सारभूतं सनातनम्।
सर्वनयात्मकं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।२६।।

योगमार्ग असंख्य हैं उसमें यह मन्त्र सनातन और सारभूत एवं सभी स्वरूप है, ऐसे नमस्कार का सदा ध्यान कर।।२६।।

सम्यग्ज्ञानप्रदं मन्त्रं मिथ्यात्वविषनाशनम्।
कैवल्यदायकं साक्षान्नमस्कारं सदा स्मर।।२७।।

मिथ्यात्व को दूर करनेवाले, साक्षात् केवलज्ञान एवं सम्यग्ज्ञान को देनेवाले नमस्कार मन्त्र का सतत ध्यान कर।।२७।।

तं परमार्थसारं हि दृष्टिरागनिवारकम्।
सत्त्ववृद्धिकरं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।२८।।

दृष्टि राग का निवारक मोक्षमार्ग का सार तथा सत्त्व को बढानेवाले इस नमस्कार मन्त्र का सतत ध्यान कर।।२८।।

महापुण्योदयाद्यस्मिन् वाञ्छाऽभिजायते नृणाम्।
सम्प्राप्य भाग्ययोगात्तं नमस्कारं सदा स्मर।।२९।।

महान् पुण्य के उदय से मनुष्यों की अभिरूचि इस मन्त्र में होती है अतः भाग्ययोग से उसे प्राप्त करके नमस्कार का ध्यान कर।।२९।।

सदाचारप्रदं मन्त्रं ब्रह्मज्ञानप्रकाशकम्।
सर्वविज्ञानपूर्णं तं नमस्कारं सदा स्मर।।३०।।

यह मन्त्र सदाचारों को देनेवाला ब्रह्मज्ञान को बतानेवाला सभी विज्ञानोंब का भाण्डार है, इसलिए सतत तू इस नमस्कार का स्मरण कर।।३०।।

अधिकारिविभेदेन सर्वयोगप्रदर्शकम्।
मैत्र्यादिभावयुक्तस्त्वं नमस्कारं सदा स्मर।।३१।।

अधिकारी भेद (सम्प्रदाय भेद) से सभी योगों को दिखानेवाला मैत्री आदिभाव से युक्त यह मन्त्र है अतः सतत नमस्कार मन्त्र का तू ध्यान कर।।३१।।

जपाद्विशुद्धप्राणैस्तु करोति सुभगोदयम्।
सच्चिदानन्दरूपं तं नमस्कारं सदा स्मर।।३२।।

प्राणायाम क्रिया से विशुद्ध होकर जप करने से यह सौभाग्य काअ उदय करता है अतः सत् रूप–ज्ञानरूप तथा आनन्दरूप उस नमस्कार मन्त्र का सदा ध्यान कर।।३२।।

बाह्यान्तरविभेदेन सद्धर्मप्रतिपादकम्।
मोक्षदूतं महामन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।३३।।

बाह्य और अन्तर के विभेद (ध्यान की वह अवस्था जिसमें मन और आत्मा का अभेद सम्बन्ध बनता है तथा शरीर की नश्वरता और आत्मतत्त्व से भिन्नता का ज्ञान होता है) से सत्य धर्म को प्रतिपादन करनेवाला मोक्ष का दूतरूप इस नमस्कार महामन्त्र का तू ध्यान कर।।३३।।

सार्द्धत्रिवलयोपेतं सर्वचक्रविभेदकम्।
कुण्डलिनीस्वरूपं तं नमस्कारं सदा स्मर।।३४।।

साढेतीन वलयवाले; सभी चक्रों को भेदन करनेवाले कुण्डलिनी स्वरूप इस नमस्कार मन्त्र का तू सदा ध्यान कर।।३४।।

मर्मस्थानेषु सर्वेषु त्रिकोणेषु च सन्धिषु।
कृत्वा न्यासं हि चित्तस्थं नमस्कारं सदा स्मर।।३५।।

सभी मर्मस्थानों, सन्धियों एवं त्रिकोणों में स्थापित करके चित्त में रहे हुए इस नमस्कार मन्त्र का सदा ध्यान कर।।३५।।

परित्यजेतरत्सर्वं कुम्भकेन निरन्तरम्।
शक्तिविस्तारणे ध्याने नमस्कारं सदा स्मर।।३६।।

सभी बातों की उपेक्षा करते हुए कुंभक (प्राणवायु को रोकना) से शक्ति का विस्तार करके ध्यान में सदा नमस्कार का ध्यान कर–अर्थात् पूरक–कुंभक रेचक पद्धतिद्वारा प्राणायाम करके ध्यान में तू नमस्कार का स्मरण कर।।३६।।

अभ्यस्य धारणाः सर्वाः पिण्डस्थध्यानदर्शिताः।
विस्तार्य सर्वशक्तिं च नमस्कारं सदा स्मर।।३७।।

शरीर में बताए गये सभी स्थानों का ध्यान करके सभी धारणाओं (ध्येयस्थानों) का अभ्यास करके एवं सभी शक्तियों (सर्वाङ्ग ध्यान सामर्थ्य) का विस्तार करके तू नमस्कार का सदा ध्यान कर।।३७।।

सङ्क्ष्यात्पुण्यपापानां भवव्याधिविनाशकम्।
सर्वज्ञभाषितं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।३८।।

पुण्य–पाप सभी कर्मों का क्षय करके भवरूप व्याधि को नाश करनेवाला, सर्वज्ञद्वारा उपदिष्ट नमस्कार मन्त्र का सदा स्मरण कर।।३८।।

ग्रन्थिभेदक्रमेणैव परशक्तिविभेदनात्।
त्रैलोक्यपूरणं कृत्वा नमस्कारं सदा स्मर।।३९।।

क्रम से ग्रन्थि के भेदन से कर्मशक्ति (कर्म गाठ) का भेदन होता है त्रैलोक्य पूरण (केवली समुद्घात में) करके सदा नमस्कार कर।।३९।।

पञ्चवर्णमयं मन्त्रं मन्त्रं नवपदात्मकम्।
अष्टदले महापद्मे नमस्कारं सदा स्मर।।४०।।

बडे अष्टदल कमल पर पाँच वर्णों से युक्त नवपदवाले इस नमस्कार का तू सदा ध्यान कर।।४०।।

चन्द्रबिम्बगतं मन्त्रं मन्त्रं वा रविसंस्थितम्।
अग्निज्वालासमाक्रान्तं नमस्कारं सदा स्मर।।४१।।

चन्द्रबिम्ब या सूर्यकिरण में अग्निज्वाला के समान तेजवाले नमस्कार मन्त्र का तू सदा ध्यान कर।।४१।।

सर्वरक्षाकरं मन्त्रं मन्त्रं सर्वार्थसिद्धिदम्।
सर्वानन्दमयं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।४२।।

सभी विपत्तियों में रक्षा करनेवाला, सभी कार्यों में सफलता देनेवाला तथा आनन्दरूप इस नमस्कार मन्त्र का सदा ध्यान कर।।४२।।

सर्वरोगहरं दिव्यं सर्वाशापरिपूरकम्।
त्रैलोक्यमोहनं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।४३।।

यह मन्त्र दिव्य, सभी रोगों का हरण करनेवाला, सभी मनोरथ को पूरा करनेवाला तीनों लोक को वश में रखनेवाला है, अतः तू नमस्कार का सदा ध्यान कर।।४३।।

शान्तितुष्टिकरं मन्त्रं मन्त्रं कर्महुताशनम्।
मोक्षसिद्धिप्रदं भक्त्या नमस्कारं सदा स्मर।।४४।।

शान्ति देनेवाला, सन्तोष देनेवाला, कर्मों का क्षय करनेवाला मोक्षरूप सिद्धि देनेवाला यह मन्त्र अतः भक्तिपूर्वक तू इसका स्मरण कर।।४४।।

षट्कर्मसाधकं मन्त्रं सोमसूर्यानलात्मकम्।
सर्वश्रेयस्करं सद्यो नमस्कारं सदा स्मर।।४५।।

सूर्य-चन्द्रमा के समान तेज (ज्योति) वाले, ६ कर्मों को सिद्ध करनेवाले, तुरन्त ही कल्याण करनेवाले, इस नमस्कार मन्त्र का सदा स्मरण कर।।४५।।

चमत्कारकरं मन्त्रं मन्त्रं शोकनिवारकम्।
सर्वाह्लादकरं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।४६।।

सभी शोकों को दूर करके सब प्रकार की खुशियों को देनेवाले, चमत्कार (अनहोनी) करनेवाले नमस्कार मन्त्र का सदा ध्यान कर।।४६।।

सर्वतीर्थमयं मन्त्रं मन्त्रं सर्वव्रतोपमम्।
सर्वयोगीश्वरैर्ध्यातं नमस्कारं सदा स्मर।।४७।।

सभी तीर्थों का निवास इसमें हैं सभी व्रत के समान फल देनेवाला यह मन्त्र है सभी योगी इसका ध्यान करते हैं अतः तू सदा नमस्कार का ध्यान कर।।४७।।

महामृत्युहरं मन्त्रं मन्त्रं जन्मनिषेधकम्।
प्रमादपरिहारेण नमस्कारं सदा स्मर।।४८।।

जन्म को रोकनेवाले, मृत्यु का हरण करनेवाले इस मन्त्र का सदा तू आलस्य दूर करके ध्यान कर।।४८।।

सर्वावेशकरं मन्त्रं मन्त्रं वेधकरं पुनः।
सर्वामृतकरं मन्त्रं नमस्कारं सदा स्मर।।४९।।

सभी प्रकार का उत्साह देनेवाला कर्मों का क्षय करनेवाला अमृतदायक इस नमस्कार का स्मरण कर।।४९।।

गुरोर्भद्रङ्कराख्यस्य पन्न्यासपदधारिणः।
प्रसादाद्रचितं भक्त्या नमस्कारस्तवं नवम्।।५०।।

गुरु पंन्यास श्री भद्रङ्करविजय महाराज को नमन है, जिनकी कृपा से यह नये नमस्कारस्तव की रचना हुई।।५०।।

।।नमस्कारनिरूपणम्।।

नत्वां वीरं गुरुं भक्त्या जननीं जनकं तथा।
भव्यानां श्रेयसे कुर्वे नमस्कारनिरूपणम्।।१।।

भगवान् महावीर, गुरु तथा माता-पिता को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके भव्यों के कल्याण के लिए नमस्कार निरूपण करता हूँ।।१।।

नमस्कारेण मन्त्रेण पारम्पर्यसमागतम्।
गुर्वादितत्त्वविज्ञानं भवबन्धविमोचकम्।।२।।

नमस्कारमन्त्र से परम्परा से आये हुए गुरु आदि तत्त्वों का ज्ञान होता है, यह भवबन्धन से मुक्त करनेवाला है।।२।।

नमस्कारेण मन्त्रेण दुःखदौर्भाग्यनाशनम्।
विघ्नौघशमनं चैव सर्वपापप्रणाशनम्।।३।।

नमस्कारमन्त्र से भाग्य की विपरीतता एवं दुःख नाश होता है, सभी विघ्नों का शमन होकर सभी पापों का नाश होता है।।३।।

नमस्कारेण मन्त्रेण सर्वोपद्रववारणम्।
सर्वव्याधिविनाशश्च दीर्घायुश्चरितं शुभम्।।४।।

नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से सभी उपद्रव रुक जाते हैं, सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं तथा लोग शुभ आचरण करते हुए दीर्घायुषी होते हैं।।४।।

नमस्कारेण मन्त्रेण कृते ध्याने निरन्तरम्।
परीषहोपसर्गेषु निश्चलं स्यान्मनः सदा।।५।।

नमस्कारमन्त्र का निरन्तर ध्यान करने से परीषह एवं उपसर्गों में मन सदा निश्चल रहता है।।५।।

नमस्कारेण मन्त्रेण गुणानुरागसम्भवात्।
गुणशालिप्रमोदाच्च गुणवृद्धिर्भवेत्सदा।।६।।

नमस्कार मंत्र से गुणों का अनुराग उत्पन्न होता हैं। गुणसंपन्न आत्माओं को देखकर प्रमोद होता है, उसके कारण निरन्तर गुणों की वृद्धि होती है।।६।।

नमस्कारेण मन्त्रेण लोके पूज्यतमा हि ये।
जायन्ते पूजिताः सर्वे मोक्षमार्गे प्रतिष्ठिताः।।७।।

नमस्कारमन्त्र से जिस लोक में जिन लोगों द्वारा आदर के पात्र होते हैं तथा मोक्षमार्ग में प्रतिष्ठित होते हैं और पूज्य बनते हैं।।७।।

नमस्कारेण मन्त्रेण सर्वं शक्यं जगत्त्रये।
महाश्चर्यकरं मन्ये नात्र कार्या विचारणा।।८।।

नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से तीनों लोक के असंभव कार्य संभव हो जाते हैं, अतः इस मन्त्र को महान् आश्चर्यकारी कहा गया है। इसकी उपासना हेतु विचार नहीं करना चाहिए, अर्थात् मन आगे-पीछे नहीं करना चाहिए ऐसा मेरा मानना है।।८।।

नमस्कारेण मन्त्रेण शुभध्यानपरायणः।
लोके सर्वं मनोऽभीष्टं ध्याता प्राप्नोति सत्वरम्।।९।।

शुभध्यान में अभ्यस्त ध्यानी नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से इस लोक में शीघ्र ही अपने सभी अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त करता है।।९।।

नमस्कारेण मन्त्रेण साधकस्य प्रजायते।
ऐश्वर्यं परमं लोके सौभाग्यं न च विस्मयः।।१०।।

नमस्कारमन्त्र की साधना से साधक के सौभाग्य का उदय होता है, जिससे लोक में परम ऐश्वर्य की प्राप्ति निःसन्देह रूप से होती है।।१०।।

नमस्कारेण मन्त्रेण भवरोगविनाशकः।
भव्यानां भवनिर्वेदः सर्वदैव विवर्द्धते।।११।।

नमस्कारमन्त्र से भव्यों के भवरूप रोग को नाश करने (मिटाने) वाला, भव का निर्वेद संसार के ऊपर उदासीनता का भाव सदा बढता है।।११।।

नमस्कारेण मन्त्रेण कामक्रोधादिनाशतः।
प्रक्षयः सर्वपापानां शाश्वतः कथितो बुधैः।।१२।।

पंडितों का कहना है कि नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से एवं काम-क्रोध आदि के नाश होने से सभी पापों का शाश्वत क्षय हो जाता है।।१२।।

नमस्कारेण मन्त्रेण दुर्ध्यानं नश्यति क्षणात्।
ततोऽभ्याससमायोगात्साम्यं सर्वत्र सर्वदा।।१३।।

नमस्कारमन्त्र से दुर्ध्यान एक क्षण में नष्ट हो जाता है उसी कारण अभ्यास के योग से हर जगह समता भाव रहता है।।१३।।

नमस्कारेण मन्त्रेण शुद्धध्यानप्रभावतः।
संवरो भावतश्चैव निर्जरा जायते ध्रुवम्।।१४।।

नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से शुद्ध ध्यान होता है तथा उससे संवर भाव होकर निश्चित ही कर्म की निर्जरा होती है।।१४।।

नमस्कारेण मन्त्रेण शुक्लध्याने प्रजायते।
सर्वेषां भवबीजानां रागादीनां विनाशनम्।।१५।।

नमस्कारमन्त्र से दो प्रकार के शुक्ल ध्यान होते हैं[१] जिससे भव के सभी रागादि बीज का नाश होता है।।१५।।

नमस्कारेण मन्त्रेण तस्याचिन्त्यप्रभावतः।
स्वर्गापवर्गसिद्धिस्तु भव्यानां शीघ्रमेव हि।।१६।।

नमस्कारमन्त्र से उसके अचिन्त्य प्रभाव के कारण भव्यों को शीघ्र ही स्वर्ग और अपवर्ग की सिद्धि होती है।।१६।।

नमस्कारेण मन्त्रेण रत्नत्रयीप्रतापतः।
यो जिनः सोऽहमेवेति स्वानुभूतिः प्रजायते।।१७।।

नमस्कारमन्त्र से तथा रत्नत्रयी (सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र) के प्रताप से जो जिन है वही मैं हूँ' ऐसी आत्मप्रतीति होती है।।१७।।

---

१ **एकत्वपृथक्सविचार, एकत्ववितर्कनिर्विचार।**

नमस्कारेण मन्त्रेण सर्वकर्मविनाशनात्।
अतिक्रामति संसारं ब्रह्मज्ञः पुरुषः स्वयम्।।१८।।

ब्रह्मज्ञ (आत्मसाक्षात्कर्ता) पुरुष स्वयं ही नमस्कारमन्त्र से सभी कर्मों का नाश करके संसार को पार करता है।।१८।।

नमस्कारेण मन्त्रेण मोक्षसिद्धिः प्रकीर्तिता।
तस्मान्मोक्षैकलाभाय ध्येयः स सर्वदा मुदा।।१९।।

नमस्कारमन्त्र से मोक्ष की सिद्धि कही गयी है इसलिए मोक्ष के लिए प्रसन्नचित्त से इस मन्त्र का ध्यान करना चाहिए।।१९।।

नमस्कारेण मन्त्रेण देवतास्तुतिरुत्तमा।
चिदानन्दप्रदा साक्षाज्जायते नात्र संशयः।।२०।।

नमस्कारमन्त्र से देवता की उत्तम स्तुति साक्षात् चिदानन्द देने वाली होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं।।२०।।

नमस्कारेण मन्त्रेण जिनानुरागवृद्धितः।
सिद्ध्यति भक्तियोगस्तु भव्यानां खलु मुक्तिदः।।२१।।

नमस्कारमन्त्र से तथा वीतराग के प्रति प्रेम के वृद्धि से भक्तियोग सिद्ध होता हैं, जो भव्यों को मुक्ति देता है।।२१।।

नमस्कारेण मन्त्रेण जपक्रियासु तत्परः।
क्रियायोगी ध्रुवं याति ज्ञानयोगं सदोत्तमम्।।२२।।

नमस्कारमन्त्र से सतत जपयोगी और क्रिया में तत्पर क्रिया योगी उत्तम ज्ञानयोग को प्राप्त करते हैं।।२२।।

नमस्कारेण मन्त्रेण मुक्तात्मगुणचिन्तनात्।
सिद्ध्यति ज्ञानयोगो वै महानिर्वाणकारकः।।२३।।

नमस्कारमन्त्र द्वारा मुक्त आत्माओं के गुण का चिंतन करने से ज्ञानयोग सिद्ध होता है जो मोक्ष का कारक है।।२३।।

नमस्कारेण मन्त्रेण सेव्यते परमात्मनः।
सगुणं निर्गुणं रूपं धर्मकामार्थमोक्षदम्।।२४।।

नमस्कार मंत्र से परमात्मा के सगुण या निर्गुण रूप की सेवा होती है, जो धर्म-काम अर्थ-और मोक्ष देता है।।२४।।

नमस्कारेण मन्त्रेण सगुणोपासनं तथा।
ब्रह्मतत्त्वस्य विज्ञानान्निर्गुणोपासनं क्रमात्।।२५।।

नमस्कारमन्त्र से सगुण की उपासना होती है तथा ब्रह्मतत्त्व के ज्ञान के बाद क्रम से निर्गुण की उपासना होती है।।२५।।

नमस्कारेण मन्त्रेण प्रातिहार्यादिमण्डितम्।
सगुणं भगवद्रूपं ध्यायते खलु रागिभिः।।२६।।

रागीयों के द्वारा नमस्कारमन्त्र से प्रातिहार्य से युक्त भगवान् के सगुणरूप का ध्यान किया जाता है। (अर्थात् नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से रागियों को भी भगवद्दर्शन होता है।)।।२६।।

नमस्कारेण मन्त्रेण कृत्वा यस्तत्त्वनिश्चयम्।
करोति निर्गुणं ध्यानं स हि ज्ञानेन सिद्ध्यति।।२७।।

नमस्कारमन्त्र से तत्त्व का निश्चय करके जो निर्गुण ध्यान करता है वही ज्ञान से सिद्ध होता है।।२७।।

नमस्कारेण मन्त्रेण निर्गुणं ब्रह्म योगिभिः।
ध्यायते तद्गुणानां हि कृत्वाऽध्यारोपणं हृदि।।२८।।

योगी लोग निर्गुण ब्रह्म के गुणों को हृदय में आरोपित करके नमस्कारमन्त्र से उसका ध्यान करते हैं।।२८।।

नमस्कारेण मन्त्रेण भावश्रद्धासमन्विताः।
मुक्तिशर्मप्रदं यान्ति परमं प्रशमामृतम्।।२९।।

नमस्कारमन्त्र से भाव और श्रद्धा युक्त साधक मुक्ति तथा सुख को देनेवाले प्रशम अमृत को प्राप्त करते हैं।।२९।।

नमस्कारेण मन्त्रेण योगाभ्यासरतैः सदा।
बुधैस्तु नीयते कालो ध्यानाद्धि परमेष्ठिनाम्।।३०।।

नमस्कारमन्त्र के कारण योगाभ्यासी पंडित ध्यानमात्र से ही पञ्चपरमेष्ठि को ध्यान द्वारा समय यापन करते हैं।।३०।।

नमस्कारेण मन्त्रेण ब्रह्मचर्ये रतो नरः।
ज्ञात्वा गुरुमुखाच्छास्त्रं सर्वविद्याधिपो भवेत्।।३१।।

नमस्कारमन्त्र से ब्रह्मचारी नर गुरुमुख से शास्त्र का अभ्यास करके सभी विद्याओं का अधिपति हो जाता है।।३१।।

नमस्कारेण मन्त्रेण ज्योतिरूपतया स्थिताम्।
जिह्वाग्रे कुण्डलीं ध्यायन्मूर्खोऽपि स्याद्बृहस्पतिः।।३२।।

नमस्कारमन्त्र द्वारा ज्योतिरूप कुण्डली का जिह्वा के अग्रभाग में ध्यान करते हुए मूर्ख भी बृहस्पति (विद्याओं का स्वामी) हो जाता है।।३२।।

नमस्कारेण मन्त्रेण पाषाणेन समो जनः।
भवेच्चातुर्ययुक्तश्च महावाक्यार्थपारगः।।३३।।

पत्थर के समान बुद्धिहीन मनुष्य भी नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से शास्त्रों के महावाक्यार्थ जान लेता है।।३३।।

नमस्कारेण मन्त्रेण भावनाध्यानतत्परः।
आत्मविज्ञानमात्रेण प्रोच्यते श्रुतकेवली।।३४।।

नमस्कारमन्त्र के कारण भावना ध्यान में लीन साधक, केवल आत्मा का ज्ञान होने पर भी श्रुतकेवली कहा जाता है।।३४।।

नमस्कारेण मन्त्रेण ध्याता लोकेऽतिविश्रुतः।
सर्वागमार्थवेत्ता च सर्वज्ञो जायते ध्रुवम्।।३५।।

ध्यानी नमस्कारमन्त्र से लोक में ख्यातिवान् होता है, सभी आगमों के अर्थ को जाननेवाला होता है तथा निश्चित ही (कालान्तर में) सर्वज्ञ होता है।।३५।।

नमस्कारेण मन्त्रेण त्रैलोक्यमरुणीकृतम्।
भोवयेद्यो हि सर्वत्र वशे तस्य जगत्त्रयम्।।३६।।

इस रंगीले (रक्तिम) संसार को जो नमस्कारमन्त्र के द्वारा यह त्रिलोक रक्तवर्णी हो गया है ऐसी भावना करनेवाले साधक को तीनों लोक वश हो जाते हैं।।३६।।

नमस्कारेण मन्त्रेण बहिर्वृत्तिविनाशतः।
सत्त्ववृद्ध्या चिदानन्दे साधको लीयते स्वयम्।।३७।।

नमस्कारमन्त्र से बहिर्वृत्ति का नाश होकर (मन अन्तर्मुखी हो जाता है) सत्त्व की वृद्धि होती है और साधक स्वयं ही चिदानन्द में लीन हो जाता है।।३७।।

नमस्कारेण मन्त्रेण पूजनं परमेष्ठिनाम्।
अभेदो मन्यते भावाद्वाच्यवाचकयोर्यदा।।३८।।

नमस्कारमन्त्र से जब भाव से वाच्यवाचक का अभेद प्रतीत होता है तब परमेष्ठि की पूजा होती है।।३८।।

नमस्कारेण मन्त्रेण जपे सूक्ष्मे कृते सति।
भवेन्नादानुसन्धानं सत्यं सत्यं न संशयः।।३९।।

नमस्कारमन्त्र से जप सूक्ष्म करने से निश्चित ही नाद का अनुसन्धान होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।।३९।।

नमस्कारेण मन्त्रेण स्वरूपरमणात्सदा।
क्षीयन्ते सर्वकर्माणि राजयोगेन सत्वरम्।।४०।।

नमस्कारमन्त्र से अपने अन्दर (आत्मा में) सदा रमण (मनन) करने से राजयोग से शीघ्र ही सभी कर्मों का क्षय हो जाता है।।४०।।

नमस्कारेण मन्त्रेण चितवृत्तिनिरोधतः।
ब्रह्मतत्त्वं स्वयं शीघ्रं स्वात्मान्येव प्रकाशते।।४१।।

नमस्कारमन्त्र द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध (मन का स्थिरीकरण) करने से अपनी आत्मा में ब्रह्मतत्त्व स्वयं शीघ्र ही प्रकाशित होता हैं।।४१।।

नमस्कारेण मन्त्रेण सद्गुरोः कृपया क्षणात्।
ब्रह्मात्मैक्यानुसन्धानं जायते मोक्षकाङ्क्षिणाम्।।४२।।

मुमुक्षुओं को सद्गुरु की कृपा से नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से क्षणभर में ब्रह्म और आत्मा एक है ऐसा आभास होता है।।४२।।

नमस्कारेण मन्त्रेण शान्तचित्तो हि साधकः।
विस्मृत्य स्वशरीरं वै जायते ब्रह्मतत्परः।।४३।।

नमस्कारमन्त्र से साधक का चित्त शान्त हो जाता है, जिससे वह अपने शरीर को भूलकर ब्रह्म में लीन हो जाता है।।४३।।

नमस्कारेण मन्त्रेण हित्वा पौद्गलिकं सुखम्।
ध्याता ब्रह्मानुसन्धानात्स्वयमेव सुखायते।।४४।।

नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से ध्यानी शारीरिक सुख को छोडकर ब्रह्म के ध्यान में लीन होकर अलौकिक सुखमय बन जाता है।।४४।।

नमस्कारेण मन्त्रेण गम्भीरं ब्रह्म वेत्ति यः।
समाधिर्जायते तस्य निर्विकल्पो न संशयः।।४५।।

नमस्कारमन्त्र के स्मरण से जो ब्रह्मतत्त्व को जानता है निश्चित ही उसकी निर्विकल्प समाधि होती है।।४५।।

नमस्कारेण मन्त्रेण भावनाज्ञानवृद्धितः।
सद्ध्यानदीपनं चैव ब्रह्मभावो भवेद् ध्रुवम्।।४६।।

नमस्कारमन्त्र के सेवन से भावना, ज्ञान की वृद्धि होती है, सद्ध्यान का उदय होता है तथा निश्चित ही उसमें ब्रह्मभावना आती है।।४६।।

नमस्कारेण मन्त्रेण ध्याता ध्यानमुपागतः।
ध्यानवीर्यप्रभावाद्धि ध्येयरूपः प्रजायते।।४७।।

नमस्कारमन्त्र का ध्यान करने पर ध्यानी की ध्यानशक्ति बढती है जिससे ध्याता ध्येयरूप हो जाता है।।४७।।

नमस्कारेण मन्त्रेण भावयन् सततं सुधीः।
ब्रह्माण्डं निखिलं पिण्डे याति लोकाग्रसंस्थितिम्।।४८।।

पण्डित लोग नमस्कारमन्त्र का तथा पिण्ड में ब्रह्माण्ड का निरंतर ध्यान करते हुए मोक्ष को जाते है।।४८।।

नमस्कारेण मन्त्रेण 'सोऽहं'भावेन सन्ततम्।
यो ध्यायति परं ब्रह्म सत्वरं स हि सिद्ध्यति।।४९।।

नमस्कारमन्त्र से परब्रह्म का एकाकार भाव (जो वह है मै वही हूँ अर्थात् आत्मा-परमात्मा में अभेद) से जो ध्यान करता है वह शीघ्र ही सिद्ध होता है।।४९।।

गुरोर्भद्रङ्कराख्यस्य पन्न्यासपदधारिणः।
प्रसादाद्रचितं ह्येतन्नमस्कारनिरूपणम्।।५०।।

पंन्यास गुरुवर श्री भद्रङ्करविजय की कृपा से इस नमस्कार निरूपण की रचना की गई।।५०।।

।।नमस्कारनुतिः।।

नत्वा वीरं गुरुं भक्त्या जननीं जनकं तथा।
रच्यते स्वात्मलाभाय नमस्कारनुतिर्मया।।१।।

भक्तिपूर्वक भगवान् महावीर तथा माता-पिता को नमस्कार करके अपनी आत्मा के लाभ हेतु मेरे द्वारा नमस्कार नुति की रचना की जाती है।।१।।

सदा सर्वेषु कार्येषु सर्वविघ्नोपशान्तये।
आदावेव महाभक्त्या नमस्काराय मे नमः।।२।।

सभी कार्य के प्रारंभ में सभी प्रकार के विघ्नशमन के हेतु नमस्कार मन्त्र को मेरा भक्तिपूर्वक नमन है।।२।।

ग्रहणं यस्य मन्त्रस्य शस्यते श्रीगुरोर्मुखात्।
मोक्षैकहेतवे तस्मै नमस्काराय मे नमः।।३।।

गुरुमुख से जिस मन्त्र का ग्रहण प्रशस्त है, जो मोक्षका हेतु है उस नमस्कार मन्त्र को मेरा नमस्कार।।३।।

महामन्त्राधिराजाय रागादिध्वंसिने सदा।
परमैकरहस्याय नमस्काराय मे नमः।।४।।

समस्त रोगों का नाश करनेवाला, परमरहस्यरूप, महामन्याधिराज नमस्कार मंत्र को मेरा नमस्कार है।।४।।

शुद्धबोधस्वरूपाय स्वप्रकाशप्रदायिने।
मोक्षविघ्नच्छिदे तस्मै नमस्काराय मे नमः।।५।।

शुद्धबोधस्वरूपवाले, स्वप्रकाश देनेवाले तथा मोक्षमार्ग में आनेवाले विघ्नों को दूर करनेवाले नमस्कार मन्त्र को मेरा नमस्कार है।।५।।

यत्प्रसादात्प्रपश्यन्ति लोकालोकं हि योगिनः।
तस्मै ज्ञानार्करूपाय नमस्काराय मे नमः।।६।।

जिसकी कृपा से योगी लोग लोक-अलोक को देखते हैं, उस ज्ञानरूप सूर्य नमस्कार मंत्र को मेरा नमन है।।६।।

त्रैलोक्याधारभूताय सर्वक्लेशविघातिने।
मिथ्यात्वनाशिने तस्मै नमस्काराय मे नमः।।७।।

तीनों लोक के जीवों के आधार, सभी प्रकार के क्लेशों को दूर करनेवाले एवं मिथ्यात्व का नाश करनेवाले नमस्कार मन्त्र को मेरा प्रणाम।।७।।

योगविज्ञानसाराय जन्ममृत्युविरोधिने।
लोकोत्तराय मन्त्राय नमस्काराय मे नमः।।८।।

योगविज्ञान के सारभूत तथा जन्म-मृत्यु को रोकनेवाले लोकोत्तर मन्त्ररूप नमस्कारमन्त्र को मेरा प्रणाम।।८।।

मोहशत्रुविनाशश्च सर्वोपद्रववारणम्।
जायते येन तस्मै तु नमस्काराय मे नमः।।९।।

जिस महामन्त्र से मोहरूप शत्रु का नाश होता है तथा सभी उपद्रवों का निरोध होता है उस नमस्कार महामन्त्र को मेरा प्रणाम है।।९।।

एकस्मै सर्वदा यस्मै स्पृह्यते मोक्षभिक्षुकैः।
तस्मै तु पूर्णयोगाय नमस्काराय मे नमः।।१०।।

मोक्षाभिलाषी जिस एक (मन्त्र) की इच्छा करते हैं उस पूर्णयोगरूप नमस्कार महामन्त्र को मेरा प्रणाम।।१०।।

विश्वप्रतीतिरूपाय मनोविकल्पनाशिने।
आन्तरहोमसिद्ध्यर्थं नमस्काराय मे नमः।।११।।

मन के विकल्प (अस्थिरता) को समाप्त करनेवाला, विश्व की प्रतीति रूप नमस्कार महामन्त्र को आन्तरहोम की सिद्धि के लिए मैं नमन करता हूँ।।११।।

नादरूपाय सूक्ष्माय चैतन्यव्यक्तिहेतवे।
प्रमादत्यागसिद्ध्यर्थं नमस्काराय मे नमः।।१२।।

व्यक्ति के चेतनता का हेतु, सूक्ष्म तथा नादरूप नमस्कार महामन्त्र को प्रमाद (आलस्य) त्याग की सिद्धि के लिए मैं नमन करता हूँ।।१२।।

महाशक्तिसमावेशात्सामरस्यप्रदायिने।
अभेदध्यानसिद्ध्यर्थं नमस्काराय मे नमः।।१३।।

महाशक्ति के समावेश से साम्यभाव को देनेवाले इस महामंत्र नमस्कार को ध्यानलीनता के लिये नमस्कार करता हूँ।।१३।।

तुर्यातीतदशा या हि नादान्तादिषु पञ्चसु।
जायते येन तस्मै तु नमस्काराय मे नमः।।१४।।

नाद आदि पाँच दशाओं में तुर्यातीत दशा जिसके प्रभाव से होता है उस नमस्कार महामन्त्र को नमन हो।।१४।।

आत्मज्योतिःस्वरूपाय वाग्रूपाय प्रतिक्षणम्।
वाच्यवाचकसम्बन्धान्नमस्काराय मे नमः।।१५।।

आत्मा के ज्योतिस्वरूप तथा प्रतिक्षण वाच्य-वाचक सम्बन्ध से वाग् रूप नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमस्कार है।।१५।।

तस्मै सूक्ष्मातिसूक्ष्माय वाक्तत्त्वतन्तवे मुदा।
सर्वदा सर्वभावेन नमस्काराय मे नमः।।१६।।

उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म वाक् तत्त्व के तन्तुभूत नमस्कार महामंत्र को प्रसन्न चित्त से हर समय सर्वभाव से नमन करता हूँ।।१६।।

शुद्धचैतन्ययुक्ताय प्रशमामृतदायिने।
संसारे साररूपाय नमस्काराय मे नमः।।१७।।

इस संसार में साररूप, शुद्ध चैतन्य (ज्ञान) से युक्त नमस्कार महामन्त्र को मैं शान्तिरूप अमृत की सिद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ।।१७।।

उत्तमोत्तमतत्त्वाय भावश्रद्धाविधायिने।
महामाङ्गल्यरूपाय नमस्काराय मे नमः।।१८।।

भाव और श्रद्धा को देनेवाले सभी तत्त्वों में उत्तमोत्तम तत्त्व महामङ्गलरूप नमस्कार मन्त्र को मेरा नमन है।।१८।।

सर्वमन्त्रसुसिद्ध्यर्थं मातृकामूलरूपिणे।
सदा भक्तिप्रकर्षेण नमस्काराय मे नमः।।१९।।

सभी मन्त्रों की सिद्धि के लिए मूल मातृकारूप नमस्कार मन्त्र को अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमन करता हूँ।।१९।।

तस्मै गुह्यातिगुह्याय प्रमुखालम्बनाय च।
सर्वशास्त्रसमासाय नमस्काराय मे नमः।।२०।।

जीवों के प्रमुख आधार सभी शास्त्रों के संक्षेपरूप जो अत्यन्त गोपनीय है ऐसे नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमन है।।२०।।

सर्वदोषविनाशाय देवताभावसिद्धये।
सम्प्रदायानुसारेण नमस्काराय मे नमः।।२१।।

सभी दोषों को नाश करनेवाले सम्प्रदाय के अनुसार देवत्व की सिद्धि के लिये नमस्कार महामन्त्र को मैं नमन करता हूँ।।२१।।

पापनाशकमन्त्राय कलिदोषनिवृत्तये।
क्षेत्रेऽस्मिन् विषमे काले नमस्काराय मे नमः।।२२।।

इस क्षेत्र में तथा विषमकाल में कलि के दोष से छुटकारा पाने के लिए जो पवित्र मन्त्र है, उस नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमन हो।।२२।।

विशुद्धात्मस्वरूपाय सद्गतिदायिने सदा।
अज्ञानध्वान्तसूर्याय नमस्काराय मे नमः।।२३।।

सद्गति देनेवाला विशुद्ध आत्मस्वरूप तथा अज्ञानरूप अन्धकार को नाश करने में सूर्य के समान नमस्कार महामन्त्र को नमन हो।।२३।।

सिद्धस्वरूपप्राप्त्यर्थमाज्ञासङ्केतरूपिणे।
गुरोश्चिदंशतुल्याय नमस्काराय मे नमः।।२४।।

सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करने के लिए गुरु के ज्ञान अंश (भाग) के समान आज्ञा संकेतरूप नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमस्कार है।।२४।।

प्राणभूताय भव्यानां भावधर्मप्रदाय च।
योगदृष्ट्या सदैवास्तु नमस्काराय मे नमः।।२५।।

भव्यों के प्राणभूत एवं भाव धर्म को देनेवाले नमस्कार महामन्त्र को मेरा हमेशा नमस्कार हो।।२५।।

पञ्चत्रिंशद्धि वर्णा वै तीर्थकृद्वाग्गुणोपमाः।
राजन्ते यत्र तस्मै तु नमस्काराय मे नमः।।२६।।

तीर्थंकर के वाणी के समान ३५ (पैंतीस) वर्ण जिसमें शोभित होते हैं, उस नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमस्कार हो।।२६।।

निहिता गुप्तरूपेण यस्मिन् विद्याः पदे पदे।
वर्णे वर्णे पुनस्तस्मै नमस्काराय मे नमः।।२७।।

जिसमें प्रत्येक पद में तथा प्रत्येक वर्ण में गुप्तरूप से विद्याएँ भरी है ऐसे नमस्कार महामन्त्र को मेरी वन्दना है।।२७।।

सदैवोल्लासरूपाय स्वयमेवोत्थिताय च।
अन्तःस्थिताय सद्भक्त्या नमस्काराय मे नमः।।२८।।

जो उल्लासरूप है और स्वयं ही प्रगट हुआ है तथा सदा अन्तर में रहता है, उस नमस्कार महामन्त्र को मेरा सदा नमन।।२८।।

संसारप्रतिपक्षाय महासौख्यप्रदायिने।
तीर्थरूपाय मन्त्राय नमस्काराय मे नमः।।२९।।

जो संसार का शत्रु है तथा मोक्षसुख का दाता है, ऐसे तीर्थरूप नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमन।।२९।।

श्रुतसाराय ताराय कैवल्यबीजरूपिणे।
समताध्यानवृद्ध्यर्थं नमस्काराय मे नमः।।३०।।

सभी श्रुतों के सार, संसार से तारनेवाले, कैवल्य के बीजरूप नमस्कार महामन्त्र को समताध्यान में वृद्धि के लिए मेरा नमन हो।।३०।।

भावनाभिः सदा चित्ते स्थिरीकृताय यत्नतः।
पावनाय पवित्राय नमस्काराय मे नमः।।३१।।

पवित्र भावना द्वारा यत्न करने से जो चित्त में स्थिर होता है उस पावन नमस्कार मन्त्र को मेरा नमन हो।।३१।।

शुक्लध्यानाग्नियुक्ताय सर्वकर्मविदाहिने।
सर्वोत्तमाय मन्त्राय नमस्काराय मे नमः।।३२।।

शुक्लध्यान के तेज से युक्त, (अत एव) सभी कर्मों का दहन करनेवाले, सभी मन्त्रों में उत्तम नमस्कार मन्त्र को मेरा नमन हो।।३२।।

पाथेयं मोक्षमार्गे तु स्मरणं परमेष्ठिनाम्।
तेषां मन्त्रस्वरूपाय नमस्काराय मे नमः।।३३।।

परमेष्ठियों का स्मरण मोक्ष मार्ग का पाथेय (संबल) है, उनके मन्त्रस्वरूप नमस्कार महामन्त्र को मैं प्रणाम करता हूँ।।३३।।

सर्वज्ञाननिधानाय भवपाशविमोचिने।
महातेजस्विने सम्यग् नमस्काराय मे नमः।।३४।।

सभी ज्ञानों का भण्डार, भवरूपबंधन से मुक्ति दिलानेवाला, महातेजस्वी नमस्कार मन्त्र को मेरा नमन है।।३४।।

स्वात्मनि स्वानुरागाय भवरागविनाशिने।
समत्वयोगयुक्ताय नमस्काराय मे नमः।।३५।।

अपनी आत्मा पर प्रेम उपजानेवाले, भावराग (सांसरिक) को नाश करनेवाले तथा समत्वयोग से भरे हुए नमस्कार मन्त्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।३५।।

हेतवे तन्त्रविद्यानां भववारिधिसेतवे।
शब्दब्रह्मस्वरूपाय नमस्काराय मे नमः।।३६।।

संसाररूप सागर के सेतु, तन्त्रविद्याओं का कारण ऐसे शब्दब्रह्म स्वरूप नमस्कार महामन्त्र को मैं नमन करता हूँ।।३६।।

समापत्तिप्रदानेन जीवात्मपरमात्मनोः।
ऐक्यं करोति यस्तस्मै नमस्काराय मे नमः।।३७।।

समापत्ति का प्रदान करके जीवात्मा और परमात्मा दोनों को एक करनेवाले नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमन हो।।३७।।

प्रौढसंवित्स्वरूपाय ब्रह्मभावविधायिने।
प्रकाशैकस्वभावाय नमस्काराय मे नमः।।३८।।

प्रौढ ज्ञान ही जिसका स्वरूप है, जो ब्रह्मभाव का विधान करनेवाला है ऐसे प्रकाशमय नमस्कार मन्त्र को मैं नमन करता हूँ।।३८।।

योगाङ्गपरिपूर्णाय चिदानन्दप्रदायिने।
चित्तान्तर्गतमन्त्राय नमस्काराय मे नमः।।३९।।

योग से पूर्ण अङ्गवाले चित्त के अन्दर ज्ञानरूप आनन्द देनेवाले चित्त में रहनेवाले नमस्कार महामन्त्र को नमन हो।।३९।।

मन्त्रस्यार्थविकासार्थं मनोमालिन्यनाशिने।
आनन्दमग्नचित्तेन नमस्काराय मे नमः।।४०।।

मन्त्र के अर्थ विकास के लिए, मन की मलिनता (उदासीनता) को नाश करनेवाले नमस्कार महामन्त्र को आनन्द में सराबोर मन से नमन करता हूँ।।४०।।

तायिने सर्वपापेभ्यः स्वर्गापवर्गदायिने।
सानुबन्धाय योगाय नमस्काराय मे नमः।।४१।।

स्वर्ग और मोक्ष को देनेवाले, सभी पापों से मुक्त करानेवाले सानुबन्ध (परंपरा सहित) योगरूप ऐसे नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमन है।।४१।।

भवबीजाग्निरूपाय मोक्षबीजाय भावतः।
परमेष्ठिस्वरूपाय नमस्काराय मे नमः।।४२।।

भवरूप बीज के लिये अग्नि के समान मोक्ष के बीजरूप एवं भाव से परमेष्ठीरूप नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमस्कार है।।४२।।

गुरुवक्त्रैकवेद्याय ब्रह्मात्मैक्यकराय च।
मृत्युञ्जयाय मन्त्राय नमस्काराय मे नमः।।४३।।

जो मात्र गुरुमुख से जानने योग्य है, ब्रह्म के साथ आत्मा को मिलानेवाला है और मृत्यु को जीतनेवाला है ऐसे मन्त्र नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमन है।।४३।।

देशे काले त सर्वस्मिन्नामादिभिरुपास्यते।
तस्मै प्रवरमन्त्राय नमस्काराय मे नमः।।४४।।

सभी समय में, सभी देशों में सभी नामों से जिसकी उपासना की जाती है उस श्रेष्ठ मन्त्र नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमन है।।४४।।

शाश्वताय महार्थाय कैवल्यपददायिने।
मनोमयाय मन्त्राय नमस्काराय मे नमः।।४५।।

महान् अर्थवाला, केवल ज्ञान को देनेवाला, शाश्वत और मनोमय नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमन हो।।४५।।

मन्त्रतत्त्वानुसन्धानाद्वाचकाय निजात्मनः।
अभेदप्रणिधानाद्धि नमस्काराय मे नमः।।४६।।

जिस मन्त्र के तत्त्व का अनुसन्धान करने से एवं जो अभेद प्रणिधान के कारण अपने ही आत्मा का वाचक होता है, उस नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमन हो।।४६।।

साधिते मन्त्रराजे तु सिद्धा स्यान्मातृका स्वयम्।
आदराद्धि सदा तस्मान्नमस्काराय मे नमः।।४७।।

महामन्त्र की साधना से स्वयं मातृका सिद्ध होती हैं, इसलिए सतत आदरपूर्वक

नमस्कार मन्त्र को प्रणाम करता हूँ।।४७।।

आराधनात्तु लोकेऽस्मिन् वाञ्छितार्थप्रदायिने।
सर्वमन्त्रस्वरूपाय नमस्काराय मे नमः।।४८।।

आराधना करने से इस लोक में मनोकामनानुसार फल देनेवाले सभी मन्त्रों का स्वरूप नमस्कार मन्त्र को मेरा नमन हो।।४८।।

भवसन्ततिनाशाय महावीर्यविधायिने।
आत्मविश्रान्तिरूपाय नमस्काराय मे नमः।।४९।।

भव की परंपरा आवागमन को नाश करनेवाले, पराक्रम को बढानेवाले, आत्मा के विश्रामरूप नमस्कार महामन्त्र को मेरा नमस्कार हो।।४९।।

गुरोर्भद्रङ्कराख्यस्य पन्न्यासपदधारिणः।
प्रसादादार्द्रचित्ता ह्येषा नमस्कारनुतिर्नवा।।५०।।

पंन्यासप्रवर गुरु श्री भद्रङ्करविजयजी की कृपा से मैंने नई नमस्कार नुति की रचना की।।५०।।

।।नमस्कारकीर्तनम्।।

नत्वा वीरं गुरुं भक्त्या जननीं जनकं तथा।
प्रमोदाद्रच्यते रम्यं नमस्कारस्य कीर्तनम्।।१।।

भक्तिपूर्वक भगवान् महावीर, गुरु एवं माता-पिता को प्रणाम करके प्रसन्नता पूर्वक सुन्दर नमस्कार कीर्तन की रचना करता हूँ।।१।।

यदा तत्त्वत्रयीरूपं ज्ञातुं वाञ्छाऽभिजायते।
तदा प्रकाशते तत्तु नमस्कारान्न संशयः।।२।।

जब तत्त्वत्रयी को जानने की इच्छा उत्पन्न होती है तब वह तत्त्वत्रयी नमस्कार से ही प्रकाशित होते हैं इसमें कोई संदेह नहीं।।२।।

साधनाक्रमविज्ञानं हृदि स्फुरति तत्त्वतः।
शुद्धचित्तस्य शीघ्रं हि नमस्कारान्न संशयः।।३।।

शुद्ध चित्तवालों के हृदय में साधना के समय में तत्त्व से विशिष्ट ज्ञान नमस्कार महामन्त्र से ही प्रस्फुरित होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।३।।

सविस्तरं श्रुतज्ञानमनायासेन प्राप्यते।
अभेदाद्गुरुतत्त्वस्य नमस्कारान्न संशयः।।४।।

गुरु तत्त्व के साथ अभेद होने से विस्तृत श्रुतज्ञान नमस्कार महामन्त्र द्वारा अनायास ही प्राप्त होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।४।।

आगमेषु च सर्वेषु सद्यः प्रत्ययकारकः।
नास्ति नास्ति परो मन्त्रो नमस्कारान्न संशयः।।५।।

सभी आगमों में नमस्कार मन्त्र से अधिक विश्वास करने लायक मन्त्र कोई दूसरा नहीं है इसमें कोई सन्देह नहीं।।५।।

रहस्यं सर्वयोगानामतिगूढं प्रकाशते।
जप्यमानात्तु नित्यं हि नमस्काराऩ्न संशयः।।६।।

नमस्कार मन्त्र का निरन्तर जप करने से सभी योगों का अतिगूढ रहस्य प्रकाशित होता है इसमें कोई सन्देह नहीं।।६।।

सर्वेषां लययोगानां मन्त्रेऽस्मिन् प्रकृतिर्मता।
तस्माल्लयस्य प्राप्तिस्तु नमस्काराऩ्न संशयः।।७।।

सभी लयों का योग इस मन्त्र में होने से इसे प्रकृति कहा गया है अतः लय की प्राप्ति निस्सन्देह नमस्कार से होती है।।७।।

वीर्यं तन्नान्यमन्त्रेषु पुरुषार्थप्रसाधकम्।
तस्मान्मोक्षफलप्राप्तिर्नमस्काराऩ्न संशयः।।८।।

पुरुषार्थ को साधने का सामर्थ्य अन्य मन्त्रों में नहीं है, अतः नमस्कार महामन्त्र से अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होती है इसमें कोई संदेह नहीं।।८।।

अर्हतां प्रणिधानेन तीर्थकृन्नामकर्मणः।
स्याद्बन्धो ननु भव्यानां नमस्काराऩ्न संशयः।।९।।

अर्हतों के तीर्थकृत् नाम कर्म के प्रणिधान से सचमुच नमस्कार महामंत्र से भव्यों का बंध होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।९।।

करोति साधकः सद्यः स्वस्यैव वशगं जगत्।
धारणासम्प्रयोगेन नमस्काराऩ्न संशयः।।१०।।

नमस्कार मन्त्र से धारणा और सम्प्रयोग के द्वारा साधक तत्क्षण ही जगत् को अपने वश में कर लेता है यह ध्रुव सत्य है इसमें कोई संदेह नहीं।।१०।।

तत्त्वविज्ञानमात्रेण चित्तशुध्दिः प्रजायते।
जीवन्मुक्तिः क्रमात्तेन नमस्काराऩ्न संशयः।।११।।

केवल तत्त्वज्ञान से चित्त की शुद्धी होती है किन्तु नमस्कार महामन्त्र से क्रमशः जीवनमुक्ति मिलती है इसमें कोई संदेह नहीं।।११।।

मन्त्रस्मरणमात्रेण सर्वे भव्यमनोरथाः।
सिद्ध्यन्ति त्वरितं लोके नमस्कारान्न संशयः।।१२।।

इस लोक में मन्त्र के स्मरणमात्र से सभी भव्य मनोरथों की सिद्धि शीघ्र ही निश्चित रूप से नमस्कार से ही होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।१२।।

प्रगाढं परमानन्दं प्राप्नुवन्ति मुमुक्षवः।
सवीर्यध्यानयोगेन नमस्कारान्न संशयः।।१३।।

सवीर्य ध्यानयोग से मुमुक्षुओं को प्रगाढ (अलौकिक) आनन्द की प्राप्ति नमस्कार से होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।१३।।

तत्त्वतो मोक्षदं ज्ञात्वा स्वरूपं परमेष्ठिनाम्।
निःस्पृहो जायते भव्यो नमस्कारान्न संशयः।।१४।।

नमस्कार मंत्र से परमेष्ठियों का मोक्षप्रद स्वरूप तात्त्विक रूप से जानकर भव्य आत्मा निःस्पृह हो जाता है इसमें कोई संदेह नहीं।।१४।।

महामोहविनाशश्च माङ्गल्यानां परम्परा।
विध्वंसः सर्वपापानां नमस्कारान्न संशयः।।१५।।

नमस्कार महामन्त्र से सभी महामोह का नाश होता है, शुभपरम्परा का प्रारम्भ होता है और सभी पापों का नाश होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।१५।।

तत्त्वबोधो विवेकश्च जायते शुद्धचेतसाम्।
सर्वद्वन्द्वविनाशोऽपि नमस्कारान्न संशयः।।१६।।

नमस्कार महामन्त्र से शुद्धचित्तवाले को विवेक और तत्त्वबोध की प्राप्ति होती है साथ ही सभी द्वन्द्वों का नाश भी होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।१६।।

विनाशो विषयादीनां स्वात्मन्येव लयस्तथा।
स्वप्रकाशसुखप्राप्तिर्नमस्कारान्न संशयः।।१७।।

नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से विषयादियों का नाश होकर अपनी आत्मा में लय हो जाता है तथा साधक को स्वप्रकाशरूप सुख की प्राप्ति होती है इसमें कोई संदेह नहीं।।१७।।

चिदानन्दमयत्वाद्धि गुणातीतदशा सदा।
अखण्डैकरसत्वञ्च नमस्कारान्न संशयः।।१८।।

नमस्कार महामन्त्र चिदानन्दमय है अतः उसके प्रभाव से गुणातीत दशा तथा अखण्ड एक रसात्मक (ज्ञान) दशा प्राप्त होती है इसमें कोई संदेह नहीं।।१८।।

मोहशक्तिविनाशेन प्राप्यते क्रमशः खलु।
शुद्धसत्त्वैकवृध्दिस्तु नमस्कारान्न संशयः।।१९।।

निश्चित ही नमस्कार महामन्त्र से मोहशक्ति के विनाश द्वारा क्रमशः शुद्ध सत्त्व की वृद्धि होती है इसमें कोई संदेह नहीं।।१९।।

त्यागः सर्वविकल्पानां समतारसवर्धनात्।
स्वरूपानुभवश्चैव नमस्कारान्न संशयः।।२०।।

नमस्कार महामन्त्र के प्रभाव से समताभाव में वृद्धि होती है जिससे सभी विकल्पों से मुक्त साधक तुरंत ही अपने रूप का अनुभव करता है इसमें कोई संदेह नहीं।।२०।।

यान्ति सर्वाणि कर्माणि विलयं सञ्चितान्यपि।
आत्मैकाकारचित्तेन नमस्कारान्न संशयः।।२१।।

नमस्कार महामन्त्र (का ध्यान करने) से चित्त (शान्त होकर) आत्मा के साथ एकाकार हो जाता है उसके कारण सभी सञ्चितकर्म क्षीण हो जाते है इसमें कोई संदेह नहीं।।२१।।

ब्रह्मसंस्पर्शसौख्येन वासनावंशनाशतः।
धर्ममेघः समाधिः स्यान्नमस्कारान्न संशयः।।२२।।

नमस्कार महामन्त्र से वासना की परंपरा का नाश होता है अतः ब्रह्मस्पर्श का सुख प्राप्त होता है जिससे धर्ममेघ समाधि होती है इसमें कोई संदेह नहीं।।२२।।

सर्वेषां पुण्यपापानां विध्वंसो जायते क्षणात्।
स्वयं प्रकाशिते तत्त्वे नमस्कारान्न संशयः।।२३।।

नमस्कार मन्त्र से तत्त्व स्वयं (ज्ञान) प्रकाशित होता है इसके प्रकाशित होने पर पुण्य-पापरूप सभी कर्मों का क्षणभर में नाश होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।२३।।

कोशपञ्चकविज्ञानाद्ब्रह्मज्ञानविभावसुः।
उदेति हृदये साक्षान्नमस्कारान्न संशयः।।२४।।

पाँच कोश के ज्ञान से हृदय में ब्रह्मज्ञानरूप सूर्य उदित होता है यह साक्षात् नमस्कार महामन्त्र से ही होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।२४।।

गुरोः कृपां समासाद्य प्रयात्येवाचिरान्नरः।
संसारबन्धनान्मुक्तिं नमस्काराान्न संशयः ।।२५।।

गुरु की कृपा को प्राप्त करके शीघ्र ही संसाररूप बन्धन को पार कर मुक्ति की ओर प्रयाण करता ही है यह नमस्कार महामन्त्र से होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।२५।।

उत्पद्यते जिनेशे या भक्तिस्तु प्रेमलक्षणा।
त्रायते सैव दुःखेभ्यो नमस्कारान्न संशयः।।२६।।

नमस्कार महामन्त्र से जिनेश्वर भगवान् के ऊपर प्रेम लक्षणा भक्ति उत्पन्न होती है, यही भक्ति संसार के दुःखों से रक्षण करती है इसमें कोई संदेह नहीं।।२६।।

आत्मैव विद्यते ब्रह्म तात्पर्यमिदमद्भुतम्।
ज्ञायते स्फुटरूपेण नमस्कारान्न संशयः।।२७।।

आत्मा ही ब्रह्मरूप है यह तथ्य नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से ही स्पष्टरूप से अवगत होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।२७।।

धीस्वास्थ्यं परमं प्रोक्तं भावनाज्ञानमुत्तमम्।
साक्षात्कारो दृढाभ्यस्तान्नमस्कारान्न संशयः।।२८।।

बुद्धि का चरम सोपान भावनाज्ञान कहा गया है उसका साक्षात्कार नमस्कार मन्त्र के दृढ अभ्यास से ही होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।२८।।

भावनाज्ञानतो यावच्चित्तैकाग्र्यं प्रजायते।
ब्रह्माभ्यासः ततः सम्यग् नमस्कारान्न संशयः।।२९।।

भावनाज्ञान से चित्त की एकाग्रता होती है तदनन्तर सम्यक् प्रकार से ब्रह्माभ्यास होता है। ये सब निश्चित ही नमस्कार महामन्त्र से होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।२९।।

भावना विपरीता या देहादौ ह्यात्मधीः खलु।
सा तु नश्यति सध्यानान्नमस्कारान्न संशयः।।३०।।

'शरीर ही आत्मा है' यह बुद्धि विपरीत भावना है। नमस्कार महामन्त्र के द्वारा सद्ध्यान से उसका नाश होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।३०।।

देहादिभ्यो विभिन्नोऽयमात्मेति भासते स्फुटम्।
प्रत्यहं जपयोगेन नमस्कारान्न संशयः।।३१।।

आत्मा शरीरादि से भिन्न है ऐसा प्रगट अवभास प्रतिदिन के नमस्कार महामन्त्र के जप से होता है।।३१।।

कुरुते यो जपं नित्यं विना स्वर्गादिवाञ्छया।
मुच्यते स हि पापेभ्यो नमस्कारान्न संशयः।।३२।।

जो कोई नमस्कार मन्त्र का जप प्रतिदिन स्वर्गादि इच्छा से रहित भाव से करता है वह अवश्य सभी पापों से मुक्त होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।३२।।

ज्ञानगर्भितवैराग्यमन्तर्वृत्तिर्भवेत्तथा।
निजानन्दानुसन्धानं नमस्कारान्न संशयः।।३३।।

नमस्कार मन्त्र से मन में ज्ञान गर्भित वैराग्य की भावना उठती है तथा साधक परमानन्द का अनुसंधान कर पाता है इसमें कोई संदेह नहीं।।।३३।।

कामक्रोधादिशत्रूणां भवेदुन्मूलनं तथा।
भवहेतुविनाशोऽपि नमस्कारान्न संशयः।।३४।।

नमस्कार महामन्त्र से काम-क्रोध आदि शत्रुओं का मूल से नाश होता है और भव का कारण भी नष्ट होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।३४।।

मुमुक्षुः साधको नित्यं चिदानन्देऽतितत्परः।
जहाति हर्षशोकादीन्नमस्कारान्न संशयः।।३५।।

निरन्तर चिदानन्द में लीन मुमुक्षु साधक नमस्कार महामन्त्र के प्रभाव से हमेशा हर्ष–शोक आदि से परे हो जाता है इसमें कोई संदेह नहीं।।३५।।

अहं ब्रह्मेति वाक्यस्य गूढार्थो ज्ञायते यदा।
स्यात्प्रमादस्तदा नैव नमस्कारान्न संशयः।।३६।।

नमस्कार महामन्त्र से जब अहं ब्रह्म इस वाक्य के गूढ अर्थ का ज्ञान होता है तब साधक को आलस्य नहीं होता इसमें कोई संदेह नहीं।।३६।।

प्रतीतिमात्ररम्येषु भोगेषु सुलभेष्वपि।
आसक्तिर्जायते नैव नमस्कारान्न संशयः।।३७।।

नमस्कार मन्त्र से साधक को क्षणिक, सुलभ भोग में भी आसक्ति नहीं होती इसमें कोई संदेह नहीं।।३७।।

सर्वारम्भपरित्यागान्निवृत्तिर्बाह्यभावतः।
आत्माभिमुखवृत्तिः स्यान्नमस्कारान्न संशयः।।३८।।

नमस्कार मन्त्र से सभी आरम्भों के त्याग से बाह्य क्रिया से निवृत्त होकर मन आत्मा की ओर अभिमुख होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।३८।।

सर्वसङ्गपरित्यागाद्योगसिध्दिर्मता हि या।
असङ्गयोगसिद्धिः सा नमस्कारान्न संशयः।।३९।।

सर्वसंग को छोडने से जो योग की सिद्धि (योगियों के) अभिमत है, वह असंगयोग की सिद्धि नमस्कार मन्त्र की साधना से होती है इसमें कोई संदेह नहीं।।३९।।

औदासीन्ये भवेत्स्पष्टं विकल्पशमनात्पुनः।
निर्विकल्पकचैतन्यं नमस्कारान्न संशयः।।४०।।

(बाह्य भावों में) उदासीनता जागने पर स्पष्टरूप से (मानसिक) विकल्प शांत होते हैं उस से चैतन्य (आत्मा) निर्विकल्प होता है। यह नमस्कार महामंत्र से होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।४०।।

मनो विक्षेपशून्यं तु प्रशान्तं जायते ध्रुवम्।
उपैति ब्रह्मभावं च नमस्कारान्न संशयः।।४१।।

नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से मन की चंचलता दूर होकर प्रशान्तता को प्राप्त करके ब्रह्मत्व के पास पहुँचता है इसमें कोई संदेह नहीं।।४१।।

लीनत्वान्मनसः स्वस्मिन्महावाक्यार्थचिन्तनात्।
भवत्येव परानन्दो नमस्कारान्न संशयः।।४२।।

नमस्कार महामन्त्र के प्रसाद स्वरूप मन अन्तर्लीन होता है तब शास्त्र के अर्थ के (महावाक्यार्थ के) चिन्तन से परमानन्द (अलौकिक आनन्द) होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।४२।।

बहिर्वृत्तिविनाशश्च विषयानन्दवर्जनम्।
योगबीजस्य सम्प्राप्तिर्नमस्कारान्न संशयः।।४३।।

नमस्कार मंत्र से मन के बहिर्मुखी प्रवृत्ति का त्याग विषयों के आनन्द से निवृत्ति एवं योगबीज की प्राप्ति होती है इसमें कोई संदेह नहीं।।४३।।

कामविवर्जिते चित्ते शुध्दे तत्त्वस्मृतिस्तथा।
आत्मन्येव भवेत्प्रीतिर्नमस्कारान्न संशयः।।४४।।

नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से इच्छा रहित चित्त शुद्ध होने पर तत्त्व का स्मरण होता है और आत्मा के ऊपर प्रेम होता है इसमें कोई संदेह नहीं।४४।।

अधर्मात्स्यान्निवृत्तिश्च धर्मे प्रवृत्तिरेव च।
सदा लोकोपकारश्च नमस्कारान्न संशयः।।४५।।

नमस्कार महामन्त्र से अधर्म से निवृत्ति, धर्म में प्रवृत्ति एवं लोकोपकार की भावना जगती है इसमें कोई संदेह नहीं।।४५।।

भवन्त्येवानुकूलानि पञ्चभूतानि सत्वरम्।
क्षीयन्तेऽपि खलाश्चैव नमस्कारान्न संशयः।।४६।।

नमस्कार मन्त्र से शीघ्र ही पञ्चभूत अनुकूल होते हैं तथा दुष्टों का क्षय होता

है इसमें कोई संदेह नहीं।।४६।।

ऐहिकफलसन्त्यागो मोक्षेच्छा प्रबला पुनः।
चित्तवृत्तिनिरोधोऽपि नमस्काराऩ्न संशयः।।४७।।

निश्चित रूप से नमस्कार महामन्त्र से इहलौकिक सुख से विमुख होकर मोक्ष की प्रबल इच्छा जागृत होती है तथा साधक का चित्त निरोध होता है इसमें कोई संदेह नहीं।।४७।।

पिण्डस्थं च पदस्थं च रूपस्थं रूपवर्जितम्।
चतुर्विधं भवेद्ध्यानं नमस्काराऩ्न संशयः।।४८।।

नमस्कार महामन्त्र से, पिण्डस्थ ध्यान, पदस्थ ध्यान, रूपस्थ ध्यान तथा अरूपीध्यान ये चारों प्रकार के ध्यान (सिद्ध) होते हैं इसमें कोई संदेह नहीं।।४८।।

प्रशस्तध्यानसंसिध्दिर्गुणस्थानाधिरोहणम्।
कैवल्यं मोक्षप्राप्तिर्वै नमस्काराऩ्न संशयः।।४९।।

नमस्कार महामन्त्र से प्रशस्त ध्यान की सिद्धि, गुणस्थानक का अधिरोहण, कैवल्य एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है इसमें कोई संदेह नहीं।।४९।।

गुरोर्भद्रङ्कराख्यस्य पन्न्यासपदधारिणः।
प्रसादादृचित्तं सद्यो नमस्कारस्य कीर्तनम्।।५०।।

पंन्यास गुरुवर श्री भद्रङ्कर विजयजी की कृपा से शीघ्रतया नमस्कारकीर्तनम् की रचना की।।५०।।

।।नमस्कारफलम्।।

नत्वा वीरं गुरुं भक्त्या जननीं जनकं तथा।
रच्यते बालबोधाय नमस्कारफलं मया।।१।।

भक्तिपूर्वक भगवान् महावीर, गुरु एवं माता-पिता को प्रणाम करके बालजीवों के ज्ञान हेतु नमस्कार फल की रचना करता हूँ।।१।।

धनधान्यविवृद्धिश्च सौभाग्यं सुखसम्पदः।
यथेष्टवस्तुलाभो वै नमस्कारस्य सत्फलम्।।२।।

धन-धान्य की वृद्धि, सौभाग्य वृद्धि, सुख सम्पति तथा इष्ट वस्तुओंका लाभ नमस्कार महामन्त्र का फल है।।२।।

सर्वसङ्कल्पसिद्धिश्च सर्वव्याधिविनाशकम्।
दीर्घमायुर्यशः कीर्तिर्नमस्कारस्य सत्फलम्।।३।।

सभी प्रकार के मनोरथों की सिद्धि, सभी व्याधियों से मुक्त, दीर्घायुष्य, यश एवं कीर्ति नमस्कार का फल है।।३।।

दारिद्र्यशमनं चैव दुर्नीतिनाशनं तथा।
दुःखदौर्भाग्यनाशश्च नमस्कारस्य सत्फलम्।।४।।

दरिद्रता का नाश, दुर्नीति (दुष्ट स्वभाव, ईर्ष्या) का नाश, दुःख एवं दुर्भाग्य का नाश यह नमस्कार महामन्त्र का फल है।।४।।

स्तम्भनं परमन्त्रानां त्रैलोक्यमोहनं तथा।
निग्रहो भूतप्रेतानां नमस्कारस्य सत्फलम्।।५।।

दूसरों के मन्त्र प्रभाव को दूर से रोकना, तीनों लोक को आकर्षित करना

तथा भूत-प्रेतादिजन्य बाधा का दूर होना नमस्कार मन्त्र का फल है।।५।।

ऐश्वर्यं परमं लोके मन्त्रसिद्धिरनुत्तमा।
प्रसिद्धिः सर्वदेशेषु नमस्कारस्य सत्फलम्।।६।।

लोक में परं ऐश्वर्य की प्राप्ति, मन्त्र की सिद्धि, चारों ओर प्रसिद्धि नमस्कार मंत्र का है।।६।।

महासौख्यं च सर्वत्र सर्वाशापरिपूरणम्।
साधूनां सौमनस्यं च नमस्कारस्य सत्फलम्।।७।।

सर्वत्र सुख की प्राप्ति, सभी आशाओं की पूर्ति, साधुओं की सौमनस्यता (कृपा) ही नमस्कार महामन्त्र का फल है।।७।।

सिद्धिः काम्यप्रयोगानां परचक्रपराभवः।
सर्वभीतिविनाशश्च नमस्कारस्य सत्फलम्।।८।।

कामनापूर्ति के लिए किये जानेवाले अनुष्ठान में सिद्धि, शत्रुसेना का पराजय सभी प्रकार के भय का नाश ये सब नमस्कार मन्त्र का फल है।।८।।

तन्त्रप्रयोगविज्ञानं यन्त्रकौशल्यमद्भुतम्।
विश्वासः परमो मन्त्रे नमस्कारस्य सत्फलम्।।९।।

तन्त्रप्रयोग का विशिष्ट ज्ञान, यन्त्र में अद्भुत कुशलता और मंत्र में परम विश्वास नमस्कार मंत्र का फल है।।९।।

अयत्नेन वशे विद्याः कलाः सर्वा धनं महत्।
तथाप्यात्मविचारश्च नमस्कारस्य सत्फलम्।।१०।।

विना यत्न किये सभी विद्यायें एवं सभी कलाओं की सिद्धि है तथा महान् सम्पत्ति मिलती है फिर भी आत्मविचार के तरफ मन झुकता है यह नमस्कार मंत्र का फल है।।१०।।

दुष्करेष्वपि कार्येषु सौकर्यं प्रतिभाति यत्।
सर्वदेवप्रसादात्तन्नमस्कारस्य सत्फलम्।।११।।

कठिन से कठिन कार्य भी सुलभता से देवों की कृपा से सिद्ध होते हैं यह नमस्कार का ही फल है।।११।।

सर्वदेशविदेशेषु विद्वज्जनसमागमात्।
सर्वदर्शनपाण्डित्यं नमस्कारस्य सत्फलम्।।१२।।

कहीं भी देश विदेश में विद्वानों के समागम से सर्वदर्शनों में पाण्डित्य होना यह नमस्कार महामन्त्र का फल है।।१२।।

सदा वादविवादेषु प्रतिवादिपराजयः।
सर्वोच्चराजसन्मानो नमस्कारस्य सत्फलम्।।१३।।

हमेशा वादविवाद में प्रतिवादी का पराजित होना, राजा के द्वारा सर्वोच्च सम्मान की प्राप्ति नमस्कार मन्त्र का फल है।।१३।।

विद्यावृद्धैः सदा मान्यं पराकोटिसमाश्रितम्।
वक्तृत्वं च कवित्वं च नमस्कारस्य सत्फलम्।।१४।।

विद्यावृद्धों (उच्चकोटि के विद्वानों) के द्वारा मान्य श्रेष्ठ कोटि के वक्तृत्व एवं कवित्व की प्राप्ति नमस्कार मन्त्र का फल है।।१४।।

कौशलं ग्रन्थनिर्माणे वाक्चातुर्यं तथाऽद्भुतम्।
धर्मोपदेशसाफल्यं नमस्कारस्य सत्फलम्।।१५।।

ग्रन्थ निर्माण में कुशलता, अद्भुत वाक्पटुता, धर्मोपदेश में सफलता ये सब नमस्कार महामन्त्र के फल हैं।।१५।।

महाप्रज्ञा विवेकश्च श्रुतं शीलं धियो गुणाः।
श्रेयोमार्गे प्रवृत्तिर्वै नमस्कारस्य सत्फलम्।।१६।।

बहुत गहरा ज्ञान, विवेक, शास्त्र का अभ्यास (बुद्धि के गुण), सदाचार, मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति ये सभी गुण नमस्कार का ही फल है।।१६।।

पाटवं सर्वशास्त्रेषु रहस्यार्थप्रकाशकम्।
आत्मतत्त्वावबोधश्च नमस्कारस्य सत्फलम्।।१७।।

सभी शास्त्रों में निपुणता, रहस्यभूत अर्थ की प्रकाशक बुद्धि, आत्मतत्त्व का ज्ञान ये सब नमस्कार महामन्त्र के फल है।।१७।।

स्याद्वादे खलु नैपुण्यं प्रीतिर्जिनागमे तथा।
विदुषां परितोषश्च नमस्कारस्य सत्फलम्।।१८।।

स्याद्वाद में निपुणता, जिनागम पर प्रेम, विद्वानों को अपने उत्तर से संतुष्ट करना ये सब नमस्कार मंत्र के फल हैं।।१८।।

विनाशोऽशुभभावानां सङ्गतिः साधुभिः सदा।
वर्धमाना रतिर्धर्मे नमस्कारस्य सत्फलम्।।१९।।

अशुभ भावनाओं का नाश, साधुओं की संगति, धर्म में बढती अभिरुचि ये नमस्कार महामन्त्र के फल है।।१९।।

इन्द्रियाणां जयश्चैव कषायाणां जयस्तथा।
आत्मानुभानुभवसम्प्राप्तिर्नमस्कारस्य सत्फलम्।।२०।।

इन्द्रियों के ऊपर विजय, कषायों को जीतना, आत्मतत्त्व के अनुभव की प्राप्ति ये नमस्कार फल है।।२०।।

योगमार्गे प्रयाणं च सर्वविघ्नजयात्सदा।
सद्योगभूमिकाप्राप्तिर्नमस्कारस्य सत्फलम्।।२१।।

योगमार्ग में प्रयाण करना, सभी विघ्नों (काम-क्रोधादि) के ऊपर विजय प्राप्त करके सद्योग के लिए भूमिका की प्राप्ति नमस्कार मन्त्र का फल है।।२१।।

अपुनर्बन्धकत्वं च गुणा मार्गानुसारिणाम्।
सद्बोधिर्विरतिश्चैव नमस्कारस्य सत्फलम्।।२२।।

अपुनर्बंधक दशा[1], मार्गानुसारी दशा[2], सम्यग्दर्शन और विरति नमस्कार मन्त्र के शुभ फल है।।२२।।

---

१ मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति का बंध पुनः न हो ऐसी आत्मभूमिका

२. धर्मप्राप्ति की योग्यता सूचक ३५ गुणसंपन्न भूमिका।

वैराग्यवासितं चित्तं सदैवानन्दमग्नता।
योग्यता लययोगेऽपि नमस्कारस्य सत्फलम्।।२३।।

वैराग्य से भरा हुआ मन, सदा अलौकिक आनन्द में चित्त की मग्नता लययोग की योग्यता ये नमस्कार महामन्त्र के शुभ फल हैं।।२३।।

जिनेन्द्रेषु परा भक्तिरनुभूतिस्तथात्मनः।
जीवन्मुक्तिः क्रमेणैव नमस्कारस्य सत्फलम्।।२४।।

जिनेश्वरों में श्रेष्ठ भक्ति, आत्मा की अनुभुति, फिर क्रम से जीवन-मरण से मुक्ति ये नमस्कार महामन्त्र के शुभ परिणाम है।।२४।।

ऋद्धयः सिद्धयः सर्वा मुमुक्षुणां स्वयंवराः।
वाक्सिद्धिर्गुणवृद्धिश्च नमस्कारस्य सत्फलम्।।२५।।

(नमस्कार मंत्र के प्रभाव से) सभी ऋद्धियाँ (सिद्धियाँ) मुमुक्षुओं को स्वयं प्राप्त होती है। वाक् सिद्धि एवं गुणों की वृद्धि होती है यह नमस्कार मंत्र का फल है।।२५।।

हृषीकार्थेष्वनासक्तिर्धारणा मनसः स्थिरा।
सङ्कल्पकल्पनाशान्तिर्नमस्कारस्य सत्फलम्।।२६।।

इन्द्रियों के विषयों में अनासक्ति, मन की स्थिर धारणा, संकल्प में दृढता, कल्पना और शान्ति नमस्कार महामन्त्र के फल हैं।।२६।।

कारुण्याद्भव्यजीवेषु मोक्षमार्गनिरूपणे।
सर्वदैवादरो भावान्नमस्कारस्य सत्फलम्।।२७।।

भव्य जीवों पर दया करके मोक्षमार्ग का आदरभाव से निरूपण करना यह नमस्कार महामन्त्र का सत्फल है।।२७।।

चाञ्चल्यरहिता लक्ष्मीर्जिह्वाग्रे च सरस्वती।
साधनामार्गसज्ज्ञानं नमस्कारस्य सत्फलम्।।२८।।

स्थिर लक्ष्मी, जिह्वा के अग्रभाग पर सरस्वती एवं साधनामार्ग का सम्यक् ज्ञान नमस्कार महामन्त्र के शुभफल हैं।।२८।।

शलाकापुरुषादीनां विविधानि पदानि च।
तथेन्द्रादिपदान्येव नमस्कारस्य सत्फलम्।।२९।।

शलाका पुरुषों को तरह-तरह के पदों की प्राप्ति तथा इन्द्र आदि पदों की प्राप्ति नमस्कार महामन्त्र के शुभ फल हैं।।२९।।

बुद्धिः कीर्तिर्धृतिर्लक्ष्मीः श्रद्धा शक्तिर्मतिः स्मृतिः।
शान्तिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिर्नमस्कारस्य सत्फलम्।।३०।।

बुद्धि, यश, धैर्य, लक्ष्मी, श्रद्धा, शक्ति, ज्ञान, स्मरणशक्ति, शान्ति, सन्तोष एवं पुष्टि ये सब नमस्कार मंत्र के फल हैं।।३०।।

वाच्यवाचकसम्बन्धाद्वाच्यतत्त्वावबोधतः।
पदस्थध्यानसिद्धिस्तु नमस्कारस्य सत्फलम्।।३१।।

वाच्य वाचक सम्बन्ध से तथा वाच्य तत्त्व के ज्ञान से पदस्थ ध्यान की सिद्धि नमस्कार महामन्त्र का फल है।।३१।।

अर्थभावनसंयुक्तात्स्मरणात्परमेष्ठिनाम्।
आत्मनः स्फुरणं प्रोक्तं नमस्कारस्य सत्फलम्।।३२।।

अर्थ की भावना से युक्त परमेष्ठियों के स्मरण से आत्मा का स्फुरण नमस्कार का ही फल है।।३२।।

सर्वसिद्धान्तगूढार्थपरिज्ञानं विचिन्तनात्।
हेयादीनां तथा ज्ञानं नमस्कारस्य सत्फलम्।।३३।।

चिन्तन करने से सभी सिद्धान्तों के गूढ अर्थ का उचित ज्ञान तथा हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान नमस्कार मंत्र का फल है।।३३।।

चित्तशुद्धिश्च निर्वेदो ह्यनासक्तिर्विलक्षणा।
महोदयाभिलाषश्च नमस्कारस्य सत्फलम्।।३४।।

चित्त की शुद्धि, वैराग्य, विलक्षण अनासक्ति एवं महोदय की अभिलाषा (मोक्ष की इच्छा) ये सब नमस्कार मन्त्र का फल हैं।।३४।।

जिनोक्तभावनायोगात्परिणामविशुद्धितः।
गुणस्थानक्रमारोहो नमस्कारस्य सत्फलम्।।३५।।

जिनवाणी की भावना के योग से एवं परिणाम विशुद्धि से गुणस्थान के क्रम का आरोहण नमस्कार का ही फल हैं।।३५।।

पुण्यवृद्धिस्तथा शीघ्रं पातकानां निवारणम्।
समाधिमरणं चान्ते नमस्कारस्य सत्फलम्।।३६।।

पुण्य की वृद्धि, शीघ्र ही पापों का निवारण तथा अन्त में समाधिमरण नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से होते हैं।।३६।।

रहस्यं ध्यानमार्गानां सुस्पष्टं गुर्वनुग्रहात्।
परमध्यानसिद्धिश्च नमस्कारस्य सत्फलम्।।३७।।

गुरु की कृपा से ध्यानमार्ग के रहस्य का बोध और परमध्यान की सिद्धि नमस्कार मंत्र का फल हैं।।३७।।

पराप्रसादसम्प्राप्तिः सर्वकल्याणकारिणी।
स्वेच्छया विनियोगोऽपि नमस्कारस्य सत्फलम्।।३८।।

सर्वकल्याण करनेवाली परा[१] (वाणी) की प्राप्ति और उसका स्वेच्छा से विनियोग नमस्कार महामन्त्र का फल है।।३८।।

आज्ञासङ्क्रमणं शिष्ये दृष्टिपातेन सत्वरम्।
वेधशक्तिर्महातीव्रा नमस्कारस्य सत्फलम्।।३९।।

शिष्य के ऊपर मात्र दृष्टिपात करने से आज्ञा संक्रमण (करने की शक्ति) तथा तीव्र वेध शक्ति[२] यह नमस्कार मन्त्र का सत्फल है।।३९।।

अभेदेन सदा सम्यग् ध्यायतेऽर्हज्जिनेश्वरः।
भावार्हन्त्यं तदा ध्यातुर्नमस्कारस्य सत्फलम्।।४०।।

---

१ परा, पश्यन्ती, मध्यम और वैखरी ये वाणी के चार प्रकार है ।

२ वेधशक्ति–सामान्य जनों के लिये अप्राप्य पदार्थों के तल तक पहोंचने की शक्ति। जैसे–मानव का मन।

अभेदभाव से जब जिनेश्वर अर्हत् का ध्यान होता है तब ध्याता को भाव से अरिहंत तत्त्व की उपलब्धि होती है यह नमस्कार का फल है।।४०।।

सर्वत्राभ्युदयो लोके तथा मुक्तिः करे स्थिता।
द्वयं लोकोत्तरं ह्येतन्नमस्कारस्य सत्फलम्।।४१।।

लोक में हर जगह अद्भुत अभ्युदय तथा हाथ में मोक्ष ये दोनों लोकोत्तर (तत्त्व) नमस्कार के ही फल है।।४१।।

विना क्लेशेन सद्ध्याने प्रत्ययेन समादरः।
अल्पीयसैव कालेन नमस्कारस्य सत्फलम्।।४२।।

अल्प समय में और बिना किसी कष्ट के सद्ध्यान में प्रतीतिपूर्वक का आदर होना नमस्कार मंत्र का फल है।।४२।।

योगदृष्ट्यनुसारेण बोधोत्कर्षो यथाक्रमम्।
अष्टाङ्गयोगसिद्धिश्च नमस्कारस्य सत्फलम्।।४३।।

योग दृष्टि के अनुसार क्रमिक रूप से बोध का उत्कर्ष तथा अष्टाङ्ग योग की सिद्धि नमस्कार का फल है।।४३।।

निष्कामं सदनुष्ठानं ब्रह्मज्ञानसमन्वितम्।
स्वात्मन्येव लयश्चैव नमस्कारस्य सत्फलम्।।४४।।

ब्रह्मज्ञान से युक्त होकर निष्काम भाव सहित सदनुष्ठान और आत्मलीनता यह नमस्कार का फल है।।४४।।

शाब्दज्ञानाद्धि भव्यानां तत्त्वनिश्चभूमिका।
अपरोक्षानुभूतिश्च नमस्कारस्य सत्फलम्।।४५।।

भव्यों को शाब्दज्ञान से तत्त्व के निश्चय की भूमिका की प्राप्त होना तथा अपरोक्ष (साक्षात् प्रत्यक्ष आत्मा) की अनुभूति[१] नमस्कार मंत्र का फल है।।४५।।

---

१ परोक्षानुभूति वेदान्तदर्शन का पारिभाषिक शब्द है । ब्रह्मप्राप्ति उनका अर्थ है ।

आनन्दजन्यरोमाञ्चास्तथैवाश्रूणि नेत्रयोः।
प्रशान्तवाहिता सम्यग् नमस्कारस्य सत्फलम्।।४६।।

शरीर में रोमांच, आँखों में आनंदाश्रु और (चित्र में) प्रशान्तवाहितता नमस्कार मंत्र का फल है।।४६।।

चिच्छक्तेरवबोधश्च सर्वत्र समता वरा।
अभेदाद्देवताभावो नमस्कारस्य सत्फलम्।।४७।।

अपनी चैतन्य शक्ति का बोध, हर विषय में श्रेष्ठ समभाव, अभेद भाव से देवता रूप प्राप्ति यह नमस्कार का फल है।।४७।।

अधिकारो हि तन्त्रेषु चान्तर्यागस्य योग्यता।
निष्प्रत्यूहतया मोक्षो नमस्कारस्य सत्फलम्।।४८।।

शास्त्रों पर अधिकार, अन्तर्याग की योग्यता तथा निर्विघ्न रूप से मोक्ष की प्राप्ति यह नमस्कार महामन्त्र का फल है।।४८।।

अचिन्त्यपुण्यलाभो वै तीर्थकृत्पदवी पुनः।
अयोगयोगसिद्धिश्च नमस्कारस्य सत्फलम्।।४९।।

अकल्प्य पुण्य की प्राप्ति, तीर्थङ्कर पद की प्राप्ति और अयोगयोग की सिद्धि नमस्कार महामन्त्र का सत्फल है।।४९।।

गुरोर्भद्रङ्कराख्यस्य पन्न्यासपदधारिणः।
प्रसादाद्रचितं ह्येतन्नमस्कारस्य फलं शुभम्।।५०।।

पंन्यास प्रवर श्री भद्रङ्कर विजय म.सा. गुरु की कृपा से यह नमस्कार फल (नामक) शुभ ग्रन्थ की रचना की गयी।।५०।।

।।नमस्कारविवेचनम्।।

नत्वा वीरं गुरुं भक्त्या जननीं जनकं तथा।
मन्त्रासक्तो हि कुर्वेऽहं नमस्कारविवेचनम्।।१।।

भगवान् महावीर, गुरु एवं माता-पिता को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके नमस्कार मन्त्र का आसक्त मैं नमस्कार विवेचन नामक ग्रन्थ बनाता हूँ।।१।।

यस्य लोकोत्तरे मन्त्रे सर्वकार्यप्रसाधके।
नमस्कारे मनो लग्नं तस्यैवाभ्युदयो ध्रुवम्।।२।।

सभी कार्यों को सिद्ध करनेवाले लोकोत्तर नमस्कार मन्त्र में जिसका मन लग गया है, उसका निश्चित ही अभ्युदय होता है।।२।।

मोक्षबीजे 'नमो' मन्त्रे भावशुद्धिप्रदे सदा।
नमस्कारे भवेन्निष्ठा महामाङ्गल्यदायिनी।।३।।

भावशुद्धि का प्रदान करनेवाले, मोक्ष के बीजभूत नमो मन्त्ररूप नमस्कार में निष्ठा महामंगल प्रदान करनेवाली है।।३।।

भुक्तिमुक्तिप्रदे मन्त्रे यस्य लोकोत्तमे सदा।
नमस्कारे परा प्रीतिस्तस्य मुक्तिर्न संशयः।।४।।

जिसका भोग और मोक्ष देनेवाले उत्तम नमस्कार मन्त्र से उत्कृष्ट प्रेम होता है, निश्चित ही उसकी मुक्ति होती है।।४।।

अचिन्त्यशक्तिसम्पन्ने सर्वाभीष्टप्रदायके।
नमस्कारे स्थिते स्वान्ते किमसाध्यं जगत्त्रये।।५।।

अकल्पनीय शक्ति से युक्त, सर्व अभीष्ट फल को देनेवाला ऐसा नमस्कार मन्त्र जिसके हृदय में विद्यमान हो तो तीनों लोक में उसके लिए क्या असाध्य है?

अर्थात् कुछ असाध्य नहीं।।५।।

सर्वदा सानुरागं हि स्वर्गमोक्षविधायके।
नमस्कारे स्थिरं चित्तं गुरुभक्त्या प्रजायते।।६।।

गुरु की भक्ति से ही स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले नमस्कार मन्त्र में सदा चित्तअनुराग सहित स्थिर रहता है।।६।।

विद्यते नावकाशोऽपि तमसस्तु कदाचन।
नमस्कारे महासूर्ये हृदि नित्यं प्रकाशिते।।७।।

हृदय में नमस्काररूप सूर्य के नित्य प्रकाशित होने से अन्धकार को प्रवेश करने का मौका ही नहीं मिलता है।।७।।

सद्गुरोः कृपया यस्य भवेद्रुचिः सुनिश्चला।
नमस्कारे महामन्त्रे तस्य सिद्धिः स्वयंवरा।।८।।

नमस्कार महामन्त्र पर जिसका अटूट प्रेम होता है उसे सद्गुरु की कृपा से वरण करने को सिद्धि स्वयं आती है।।८।।

जायते वन्दनीयानां सर्वेषां वन्दनं क्रमात्।
नमस्कारे स्मृते भक्त्या भावसङ्कोचसंयुतैः।।९।।

भाव संकोच से युक्त होकर भक्तिपूर्वक नमस्कार महामन्त्र का स्मरण करने से क्रम से सभी वन्दनियों को वन्दन होता है।।९।।

ज्ञाते सम्यग्गुणाधिक्ये तत्त्वतः परमेष्ठिनाम्।
नमस्कारे विना यत्नं विदुषां लीयते मनः।।१०।।

नमस्काररूप परमेष्ठियों के गुणों की प्रचुरता तात्त्विक रूप से ज्ञात होने पर नमस्कार मंत्र में विना यत्न ही विद्वानों का मन लीन हो जाता है।।१०।।

रहस्यं सर्वशास्त्राणां सर्वयोगसमन्वितम्।
नमस्कारे जिनैः प्रोक्तं समासेन प्रतिष्ठितम्।।११।।

सभी जिनेश्वरों ने कहा है कि नमस्कार महामन्त्र में सभी योगों से भरा हुआ सभी शास्त्रों का रहस्य संक्षेप में (=संक्षिप्त होकर) प्रतिष्ठित है।।११।।

विद्यानां चैव मन्त्राणां सम्प्रोक्ता प्रकृतिः परा।
नमस्कारे जिनैः सर्वैर्नात्र कार्या विचारणा।।१२।।

नमस्कार में सभी विद्याएँ एवं सभी मन्त्रों का समावेश होने से सभी जिनों ने इसे परा प्रकृति कहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं।।१२।।

अशक्यं जायते शक्यं चित्ते मन्त्रे निवेशिते।
नमस्कारे क्षणादेव सत्यं सत्यं न संशयः।।१३।।

नमस्कार महामन्त्र को चित्त में स्थापित करने से क्षणभर में अशक्यकार्य शक्य हो जाते हैं, यह सन्देहरहित सत्य है।।१३।।

तावदेवान्यमन्त्राणां कौतुकं तस्य विद्यते।
नमस्कारेऽतिनिष्णातो यावन्न जायते सुधीः।।१४।।

जब तक नमस्कार मन्त्र में निष्णात (पारंगत) नहीं होता है तब तक ही बुद्धिमान पुरुष दूसरे मन्त्रों के प्रभाव से आश्चर्यित होता है।।१४।।

सर्वभोगोपभोगेषु स्वाधीनेषु मनो ध्रुवम्।
नमस्कारे दृढं लग्नं रमते न कदाचन।।१५।।

नमस्कार महामन्त्र में दृढता से मन लग जाने पर सभी भोग-उपभोग की सामग्री स्वाधीन होने पर भी साधक का मन सांसारिक भोग्य वस्तुओं में रमण नहीं करता।।१५।।

परीषहोपसर्गेषु समताऽनाहता मता।
नमस्कारेऽनुरागाद्धि हृदि पुंसां प्रतिष्ठिते।।१६।।

नमस्कार के अनुराग से परीषह और उपसर्गों में (भी) पुरुष के हृदय में समता अव्याहत रहती है।।१६।।

अमृताख्यमनुष्ठानं यद्ददात्यमृतं पदम्।
नमस्कारे हृदि ध्याते भव्यजीवैस्तु प्राप्यते।।१७।।

अमृत नामक अनुष्ठान जो अमृदपद (मोक्ष) को देनेवाला है भव्य जीव वह पद हृदय में नमस्कार मन्त्र का ध्यान करके प्राप्त करते हैं।।१७।।

एकस्मिन्नेव मन्त्रेऽस्मिन् सर्वकर्मविनाशिनी।
नमस्कारे महाशक्तिर्गणाधीशैर्निरूपिता।।१८।।

गणधरों ने नमस्कार को महाशक्तिमान् कहा है। उनके अनुसार एकमात्र इसी मन्त्र में सभी कर्मों का क्षय करने का सामर्थ्य है।।१८।।

गौरवं याति लोकेऽस्मिन् सर्वत्र पूज्यते सदा।
नमस्कारे भवेद्यस्य प्रत्ययः स्थिरचेतसः।।१९।।

जिस स्थिर चित्तवाले पुरुष के मन में नमस्कार मन्त्र के प्रति आस्था है वे इस लोक में हर जगह पूजे जाते हैं तथा सम्मनित होते हैं।।१९।।

रत्नत्रयात्मके मन्त्रे पुरुषार्थप्रसाधके।
नमस्कारे भवेत्कस्य नोत्कण्ठा खलु धर्मिणः।।२०।।

पुरुषार्थ के प्रसाधक रत्नत्रयरूप नमस्कार मंत्र के विषय में किस धर्मिपुरुष की उत्कण्ठा नही होती?।।२०।।

जिज्ञासा जायते नूनं मन्त्रेऽस्मिन्नधिकारिणाम्।
नमस्कारेऽतिसङ्क्षिप्ते ध्यानतन्त्रे जिनोदिते।।२१।।

आगम के ध्यानतन्त्र में नमस्कार मन्त्र अत्यन्त संक्षिप्त से कहा गया है, अतः इस मन्त्र के विषय में अधिकारियों को अवश्य जिज्ञासा होती है।।२१।।

मन्त्रे संसारसारे तु जन्मनिर्वाणकारणे।
नमस्कारेऽभिलाषाद्धि सर्वपापक्षयो भवेत्।।२२।।

जन्म-निर्वाण के कारण संसार में सारभूत नमस्कार मन्त्र की अभिलाषामात्र से सभी पापों का क्षय होता है।।२२।।

कल्याणं सर्वजीवानां सदा कुर्वन्ति सन्ततम्।
नमस्कारे स्थिताः सर्वे भावतः परमेष्ठिनः।।२३।।

भाव से नमस्कार में स्थित पञ्चपरमेष्ठि सभी जीवों का सदैव कल्याण करते हैं।।२३।।

क्रियमाणे जपे ध्याने निदानरहिते सदा।
नमस्कारे महाश्रद्धा स्वयमेवोपजायते।।२४।।

निदानरहित (निष्कामभाव से) ध्यान और-जप करने पर स्वयं ही नमस्कार मन्त्र पर श्रद्धा उत्पन्न होती है।।२४।।

जगत्त्रये चमत्कारो दृश्यते हि यदा तदा।
नमस्कारे परं तस्य कारणं प्राप्यते सदा।।२५।।

तीनों लोक में जब कोई चमत्कार देखने को मिलता है तो उस चमत्कार का मूल कारण नमस्कार में ही मिलता है।।२५।।

सर्वसङ्कल्पसिद्धिः स्यात् क्षणादेव न विस्मयः।
नमस्कारे मनाग् दत्ते चित्ते सद्गुर्वनुग्रहात्।।२६।।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सद्गुरु की कृपा से नमस्कार मन्त्र में थोडा भी मन लगाने से सभी कामनाओं की तत्काल सिद्धि होती है।।२६।।

श्वेतरक्तादिवर्णानां ध्यानात्पञ्चपदेषु वै।
नमस्कारेऽत्र सम्प्रोक्ता काम्यसिद्धिर्न संशयः।।२७।।

नमस्कार में पंच पदों पर श्वेत-रक्त आदि वर्णों का ध्यान करने से निश्चित ही कामना की पूर्ति होती है ऐसा कहा गया है।।२७।।

उपद्रवा विनश्यन्ति भूतप्रेतादिसम्भवाः।
नमस्कारे स्मृते सद्यस्तमांस्यर्कोदये यथा।।२८।।

भूतप्रेत आदि जन्य उपद्रव नमस्कार के स्मरण तुरंत ही मिट जाते हैं जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार नष्ट होता है।।२८।।

तस्य नश्यति दुर्ध्यानं भवसन्ततिकारणम्।
नमस्कारे सदाभ्यासान्मनो यस्य निमज्जति।।२९।।

सदा अभ्यास के कारण जिसका मन नमस्कार मन्त्र में सदा लीन रहता हैं उसका भव का कारण रूप दुर्ध्यान नष्ट होता है।।२९।।

कषाया विषयाः सर्वे क्षीयन्ते शीघ्रमेव हि।
नमस्कारे महातत्त्वे मुहुर्मुहुर्विचिन्तिते।।३०।।

नमस्कार के परम तत्त्व का बार-बार चिन्तन करने से शीघ्र ही सभी विषय और कषाय क्षीण होते हैं।।३०।।

त्यक्त्वा सर्वबहिर्भावान् सर्वथा शान्तचेतसा।
नमस्कारे रतो यो हि तस्य श्रेयो भवेद्ध्रुवम्।।३१।।

जो सभी बाह्य वस्तुओं (सांसरिक वस्तुओं) को छोडकर शान्तचित्त से नमस्कार में लीन होता है उसका कल्याण निश्चित है।।३१।।

स्थापनीया प्रयत्नैस्तु चेतोवृत्तिः पुनः पुनः।
नमस्कारे सुखार्थाय प्रातिकूल्यं विधेर्यदा।।३२।।

भाग्य जब प्रतिकूल हो तो सुख के लिए नमस्कार महामन्त्र में बार-बार मन लगाना चाहिए।।३२।।

क्रूरकर्मा नरो याति सुगतिं वा परां गतिम्।
नमस्कारेऽन्तकोलेऽपि बुद्धिः स्थिरा भवेद्यदि।।३३।।

क्रूर कर्म करनेवाले मनुष्य भी स्वर्ग या मोक्ष में जाते हैं, यदि मृत्यु के समय नमस्कार महामन्त्र में ध्यान केन्द्रित हो।।३३।।

श्रूयन्ते हा! तमोग्रस्ता जीवहिंसापरायणाः।
नमस्कारे श्रुते भावात्तिर्यञ्चोऽपि दिवं गताः।।३४।।

हा! अन्धकार (अज्ञान) से ग्रस्त होकर जीवहिंसा करनेवाले तिर्यञ्च भी नमस्कार मन्त्र के सुनने से स्वर्ग गये।।३४।।

प्रपन्ने मोक्षमार्गे त्वं सत्वरं सिद्धिहेतवे।
नमस्कारे निजं चेतः सर्वदैव स्थिरीकुरु।।३५।।

मोक्षमार्ग पर प्रवृत्त होने पर शीघ्र सिद्धि के लिए तू अपने मन को हर समय नमस्कार में स्थिर कर।।३५।।

भावनाभावितं चित्तं सुविशुद्धं क्षणादहो।
नमस्कारे लयं याति गतं ध्येयैकतानताम्।।३६।।

भावना से भावित सुविशुद्ध मात्र ध्येय में स्थिर मन क्षणभर में नमस्कार में लीन होता है।।३६।।

स्फुरिते नादरूपेण हृदि मन्त्रे निरन्तरम्।
नमस्कारे विलीयन्ते विकल्पा द्रुतमेव हि।।३७।।

नमस्कार मंत्र हृदय में जब नादरूप में खीलता है तब सभी विकल्प तुरंत ही विलीन हो जाते हैं।।३७।।

चूर्णयन्ति हठान्नूनं सर्वकर्माणि लीलया।
नमस्कारे कृताभ्यासा भव्याः शान्तिमुपागताः।।३८।।

शान्ति को प्राप्त भव्य जीव नमस्कार के अभ्यास द्वारा लीला से ही हठपूर्वक सभी कर्मों को अस्तित्त्वहीन (क्षय) करता है।।३८।।

मन्त्रात्मकं वपुर्मन्ये जिनेन्द्रैर्निहितं स्वकम्।
नमस्कारे हि कारुण्यान्निर्वाणसमये क्षितौ।।३९।।

मैं मानता हूँ कि अपने निर्वाण के समय जिनेश्वर भगवंतों ने करुणा करके अपना मंत्रात्मक शरीर नमस्कार मंत्र में समाहित किया है।।३९।।

शास्त्रज्ञैः सिद्धिकान्ताया विलासभवनं स्मृतम्।
नमस्कारे परे मन्त्रे ज्ञानदीपयुतं ध्रुवम्।।४०।।

शास्त्रज्ञों का कहना है कि श्रेष्ठ नमस्कार मंत्र में सिद्धिनामक स्त्री का विलास भवन है, जिस में ज्ञान दीपक (जलता) है।।४०।।

सकलं निष्कलं रूपं ब्रह्मणो यत्र दर्शितम्।
नमस्कारे सदा तस्मिन्निजं लक्ष्यं स्थिरीकुरु।।४१।।

ब्रह्मा का सकल और निष्कल रूप जिसमें है उस नमस्कार मंत्र में अपना लक्ष्य स्थिर करें।।४१।।

गुणानां भावनात्स्वस्मिन् सर्वदा परमेष्ठिनाम्।
नमस्कारेऽतिरागाद्वै सद्ध्यानं प्राप्यते क्षणात्।।४२।।

पञ्चपरमेष्ठि के गुणों को सद्भावना से अपने चित्त में धारण करके अत्यन्त प्रेम से नमस्कार का ध्यान करने से सद्ध्यान की प्राप्ति होती है।।४२।।

अन्तकाले भवन्त्येव सर्वशास्त्रविशारदाः।
नमस्कारे सदा लीना ध्यानमग्नाः प्रतिक्षणम्।।४३।।

सभी शास्त्र प्रविण (महापुरुष भी) अन्त समय में नमस्कार के ध्यान में सदा लीन होते हैं।।४३।।

प्रशमामृतपूर्णेऽस्मिन्मन्त्रे सर्वज्ञभाषिते।
नमस्कारे दृढं चेतस्तनोत्येवामृतं पदम्।।४४।।

प्रशमामृत से पूर्ण सर्वज्ञ द्वारा कहे गए इस मन्त्र में चित्त को दृढ करने से अमृत पद की प्राप्ति होती है।।४४।।

ज्ञानवैराग्ययुक्तानामात्मैश्वर्यप्रदायिनी।
नमस्कारे भवेद्भक्तिर्भव्यानां भाग्यशालिनाम्।।४५।।

आत्मा को ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले नमस्कार मन्त्र में भाग्यशालि ज्ञान और वैराग्य से युक्त भव्य जीवों की भक्ति है।।४५।।

सर्वसङ्गपरित्यागी सदाभ्यासं करोति यः।
नमस्कारे स यात्येव शिवमात्मनि संस्थितम्।।४६।।

जो सभी बाह्य सम्बन्धों को छोडकर आत्मा में नमस्कार का सदा अभ्यास करता है वह निश्चित ही आत्मस्थित मोक्ष प्राप्त करता है।।४६।।

निरन्तरं तपस्तप्तं सेवितं सुव्रतं चिरम्।
नमस्कारे न चेल्लग्नं मनः सर्वं निरर्थकम्।।४७।।

निरन्तर तपस्या की तथा चिरकाल तक व्रत का आचरण किया किन्तु नमस्कार में मन स्थिर नहीं है तो सब निरर्थक है।।४७।।

रहस्यं द्वादशाङ्गीनां नमस्कारो न संशयः।
नमस्कारे समत्वं वै साररूपं प्रतिष्ठितम्।।४८।।

द्वादशाङ्गी का रहस्य नमस्कार है इसमें कोई सन्देह नहीं। नमस्कार में सारभूत समता भरी है।।४८।।

मन्त्रेऽस्मिन् समतासारे मुक्तिलक्ष्मीकुलास्पदे।
नमस्कारे दृढा भक्तिः सदा मेऽस्तु भवे भवे।।४९।।

समता का सार तथा मोक्षलक्ष्मी का एकमात्र स्थान इस नमस्कार महामन्त्र में, प्रत्येक भव में मेरी भक्ति दृढ हो।।४९।।

गुरोर्भद्रङ्कराख्यस्य पन्न्यासपदधारिणः।
प्रसादाद्रचितं भावान्नमस्कारविवेचनम्।।५०।।

पंन्यास गुरु श्री भद्रङ्करविजयजी की कृपा से भावपूर्वक यह नमस्कार विवेचन की रचना की गई।।५०।।

।।नमस्कारस्मृतिः।।

नत्वा वीरं गुरुं भक्त्या जननीं जनकं तथा।
क्रियते मन्त्ररागाद्धि नमस्कारस्मृतिः शुभा।।१।।

भक्तिपूर्वक भगवान् महावीर, गुरु एवं माता पिता को नमस्कार करके मन्त्र के ऊपर राग के वशीभूत होकर नमस्कार मन्त्र का सदा स्मरण करता हूँ।।१।।

गुरुप्रसादसम्प्राप्त! संसारार्णवतारक!।
स्मरामि त्वां नमस्कार! भक्त्या प्रतिक्षणं मुदा।।२।।

गुरु की कृपा को प्राप्त होनेवाले, संसाररूप से तारनेवाले हे! नमस्कार तुम्हे मैं प्रसन्नतापूर्वक सदा स्मरण करता हूँ।।२।।

महापुण्योदयात्प्राप्त! सर्वपापप्रणाशक!।
भजामि त्वां नमस्कार! सर्वदा शान्तचेतसा।।३।।

महान् पुण्य के उदय से प्राप्त हुए हे! सभी पापों को नाश करनेवाले, नमस्कार मैं तुम्हे हमेशा शान्त मन से भजता हूँ।।३।।

सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि त्वयैकेनैव सत्वरम्।
त्वमेवातो नमस्कार! मन्त्रराजो यथार्थतः।।४।।

मात्र तुम्हारे द्वारा ही सभी कार्य शीघ्र सिद्ध होते हैं, अत एव हे! नमस्कार मंत्र तुम सही में मन्त्रराज हो।।४।।

तत्त्वोपदेशसारे तु सद्भक्त्या श्रीगुरोर्मुखात्।
त्वयि ज्ञाते नमस्कार! न पुनर्भवसम्भवः।।५।।

हे! नमस्कार! श्री गुरु के मुख से तत्त्व उपदेश के साररूप तुम्हे जानने पर पुनः इस संसार में जन्म नहीं होता है।।५।।

भजे पीयूषतुल्यं त्वां मिथ्यात्वविषनाशक!।
श्रयामि त्वां नमस्कार! महाभक्त्या भवान्तक!।।६।।

मिथ्यात्वरूप विष का नाश करनेवाले!, नमस्कारमन्त्र! तुम अमृततुल्य हो, मैं तुम्हारा भजन करता हूँ। भव के जन्म-मृत्युबाधा का अन्त करनेवाले, भक्तिपूर्वक मैं तुम्हारी सेवा करता हूँ।।६।।

दुर्ध्यानपरिहाराय स्वरूपस्थितिसिद्धये।
जपामि त्वां नमस्कार! मोक्षलक्ष्मीप्रदायक!।।७।।

दुर्ध्यान के परिहार के लिए, स्वरूपसिद्धिहेतु हे! मोक्षरूप लक्ष्मी को प्रदान करने वाले! नमस्कार! मैं तुम्हारा जाप करता हूँ।।७।।

सदा तत्त्वैकनिष्ठस्तु ध्यानयोगेन साधकः।
अन्तर्लक्ष्यो नमस्कार! स्वात्मन्येव वसेद्ध्रुवम्।।८।।

हे! नमस्कार तत्त्व में निष्ठा रखनेवाला, ध्यानयोग से आत्मलक्ष्मी साधक निश्चित ही अपनी आत्मा में रुकता है।।८।।

विश्वासामृतभूतं वै विशुद्धबोधसिद्धये।
आकण्ठं त्वां नमस्कार! पिबामि मुक्तिहेतवे।।९।।

हे! नमस्कार विशुद्धबोध (सम्यक् ज्ञान) की प्राप्ति एवं मुक्ति के लिए विश्वासरूप अमृत तुमको मैं कंठ तक पान करता हूँ।।९।।

अनन्यमनसा नित्यं हृदि संस्थाप्य भक्तितः।
सेवे त्वां हि नमस्कार! सर्वद्वन्द्वविनाशक!।।१०।।

सभी द्वन्द्वो को नाश करनेवाले नमस्कार! मैं दत्तचित्त होकर भक्तिपूर्वक तुम्हें हृदय में स्थापित करके तुम्हारी सेवा करता हूँ।।१०।।

शुष्कवादविवादेषु प्रवृत्तिर्नैव जायते।
त्वां सम्प्राप्य नमस्कार! लोके कस्यापि कर्हिचित्।।११।।

हे! नमस्कार तुमको प्राप्त करके कभी भी किसी की फलहीन वाद-विवाद में प्रवृत्ति नहीं होती।।११।।

आत्मनिश्चयवह्निस्त्वमज्ञानगहने खलु।
अत एव नमस्कार! त्वां सेवेऽहं प्रतिक्षणम्।।१२।।

हे! नमस्कार हर क्षण तुम्हारी सेवा करता हूँ कारण कि तुम अज्ञानरूप अंधकार में आत्मनिश्चयरूप वह्नि के समान हो।।१२।।

नामादिभेदतो नित्यं पञ्चानां परमेष्ठिनाम्।
प्रणिधानं नमस्कार! मोक्षसिद्धिप्रदं ध्रुवम्।।१३।।

हे! नमस्कार नाम आदि के भेद से पञ्चपरमेष्ठि का प्रणिधान निश्चित ही मोक्ष देता है।।१३।।

पदस्थध्यानसिद्ध्यर्थमेकाग्रमनसा सदा।
नमामि त्वां नमस्कार! सर्वज्ञानप्रकाशक!।।१४।।

हे! सभी ज्ञान के प्रकाशक! नमस्कार! पदस्थ ध्यान की सिद्धि के लिए एकाग्र मन से सदा तुम्हें नमस्कार करता हूँ।।१४।।

विशुद्धचेतनारूप! योगीन्द्रकल्पपादप!।
प्रसीद त्वं नमस्कार! सर्वचक्रविभेदक!।।१५।।

हे! नमस्कार, तुम विशुद्ध चेतनारूप हो, योगियों के लिये तुम कल्पवृक्ष हो, सभी चक्र को भेदनेवाले, नमस्कार! तुम प्रसन्न होवो।।१५।।

सूक्ष्मनाडीगते शुद्धे सदैवोर्ध्वविहारिणि।
त्वयि मेऽस्तु नमस्कार! महाभक्तिरहर्निशम्।।१६।।

सदा ऊर्ध्व विहार करनेवाले, सूक्ष्म नाडी में स्थित, शुद्धस्वरूप नमस्कारमंत्र! तुम्हें अहर्निश भक्तिपूर्वक मेरा नमस्कार हो।।१६।।

सुसूक्ष्मध्वनिरूपस्त्वं सर्वकर्मविदारकः।
अतस्त्वां हि नमस्कार! योगीन्द्राः संश्रिता ध्रुवम्।।१७।।

हे! नमस्कार तुम सूक्ष्म से भी सूक्ष्म ध्वनिरूप हो, सभी कर्मों को नाश करनेवाले हो, अतः योगी लोक तुम्हारे ही आश्रय में रहते हैं, तुम्हे मेरा नमस्कार है।।१७।।

चिन्तनात्त्वत्पदानां हि पर्यायो ध्येयसन्निभः।
जायतेऽतो नमस्कार! त्वां ध्यायामि निरन्तरम्।।१८।।

हे! नमस्कार तुम्हारे पदों के (ध्यानरूप) पर्याय ध्येय बन जाता है। इसलिए मैं निरन्तर तुम्हारा ध्यान करता हूँ।।१८।।

चिन्तयन् सर्वभावेन स्वबोधात्त्वां मुहुर्मुहुः।
साधकेन्द्रो नमस्कार! संविद्रश्मिमयो भवेत्।।१९।।

हे! नमस्कार! अपने ज्ञान से बार-बार सर्वभाव से तुम्हारा ध्यान करने से साधक ज्ञानकिरण से युक्त होता है।।१९।।

संयम्येन्द्रियसञ्चारं भावाच्छून्ये व्यवस्थिताः।
स्मरन्ति त्वां नमस्कार! ते यान्ति पदमव्ययम्।।२०।।

हे! नमस्कार! भावपूर्वक इन्द्रियों का संयम करके शून्य में स्थिर होनेवाला जो साधक तुम्हारा स्मरण करते हैं वे मोक्षपद को प्राप्त करते हैं।।२०।।

विरक्तीभूय ये लोके त्वां भजन्ते समाहिताः।
ते प्रयान्ति नमस्कार! पावित्र्यमुत्तरोत्तरम्।।२१।।

हे! नमस्कार, संसार से विरक्त होकर समाधि प्राप्त साधक जो तुम्हे भजते हैं वे उत्तरोत्तर पवित्रता की ओर बढते हैं।।२१।।

ये ह्यर्थानुसन्धानाद्ध्यायन्ति त्वां पुनः पुनः।
प्राप्यते तैर्नमस्कार! परानन्दो निजात्मनि।।२२।।

हे! नमस्कार, जो अर्थ के अनुसन्धान से बार-बार तुम्हारा ध्यान करते हैं, उन्हे आत्मा में ही परमानन्द की अनुभूति होती है।।२२।।

आत्मानं पश्यति प्राज्ञो नैव तुष्यति कुप्यति।
यस्य चित्तं नमस्कार! त्वयि लीनं हि वस्तुतः।।२३।।

हे! नमस्कार, जिसके चित में तुम लीन हो उस प्रज्ञावान् पुरुष को आत्मसाक्षात्कार होता हैं तथा वह (अभीष्ट वस्तु में) हर्ष नहीं करता, (अभीष्ट वस्तु में) शोक नहीं करता।।२३।।

सर्वोत्कृष्टं हि संसारे सुखं पौद्गलिकं तथा।
आत्मज्ञानं नमस्कार! मतं ते परमं फलम्।।२४।।

हे! नमस्कार, इस संसार में सर्वोत्कृष्ट पुद्गलजन्य सुख और आत्मज्ञान ये तुम्हारे ही फल है।।२४।।

आत्मज्ञानेन तृप्तस्य नित्यानित्यविवेकिनः।
जपात्ते हि नमस्कार! निःस्पृहं मानसं भवेत्।।२५।।

हे! नमस्कार, आत्मज्ञान से तृप्त नित्य और अनित्य के विवेकियों का मन तुम्हारे जप से निस्पृह हो जाता है।।२५।।

भोगमोक्षनिराकाङ्क्षी देहेऽपि विगतस्पृहः।
त्वत्प्रभावान्नमस्कार! जायते मुनिपुङ्गवः।।२६।।

हे! नमस्कार आपके ही प्रभाव से श्रेष्ठ मुनि लोग भोग और मोक्ष के निराकाङ्क्षी होते हैं, शरीर के प्रति भी निस्पृह होते है।।२६।।

अर्थभावनमात्रेण पदानां ते मुहुर्मुहुः।
भवत्येव नमस्कार! निर्विषयं स्थिरं मनः।।२७।।

हे! नमस्कार तुम्हारे पदों कें अर्थमात्र की बार-बार चिन्ता करने से मन निर्विषय होकर स्थिर हो जाता है।।२७।।

सञ्जायते लयावस्था द्वैताद्वैतविवेकिनाम्।
महिम्ना ते नमस्कार! निर्विकल्पसुखप्रदा।।२८।।

हे! नमस्कार, तुम्हारी महिमा से द्वैताद्वैत विवेकियों को निर्विकल्प सुख देनेवाली लयावस्था होती है।।२८।।

प्राप्यते खलु संसारे निर्विकल्पेन चेतसा।
प्रसादात्ते नमस्कार! देहातीतदशा सदा।।२९।।

हे! नमस्कार तुम्हारी कृपा से निर्विकल्प चित्त से संसार में लोगों को देहातीत दशा की प्राप्ति होती है।।२९।।

आत्मप्रकाशके मन्त्रे देहविनाशके त्वयि।
प्रसादात्ते नमस्कार! पुद्गलेषु न मे रतिः।।३०।।

हे! नमस्कार, तुम आत्मज्ञान के प्रकाशक हो तथा देह (संबंध) के विनाशक हो, तुम्हारे प्रसन्न होने पर पुद्गल में मेरी रति नहीं है।।३०।।

त्यक्तैव वासनाः सर्वा भवसन्ततिसञ्चिताः।
ध्यानात्ते हि नमस्कार! सिद्धाः सर्वेऽपि तत्त्वतः।।३१।।

हे! नमस्कार! वस्तुतः तुम्हारे ध्यान से ही भव में, परंपरा में संचित सभी वासनाओं का त्याग करके सिद्ध हो गये।।३१।।

परमानन्दरूपस्त्वं भवभ्रमणनाशकः।
गतिस्तस्मान्नमस्कार! त्वमेवाऽत्र सदा मम।।३२।।

हे! नमस्कार तुम परमानन्द स्वरूप हो, तुम भवभ्रमण को रोकनेवाले हो, अतः तुम्ही सदा मेरी गति हो।।३२।।

सार्थजापेन ते शीघ्रं प्रशान्तेनान्तरात्मना।
संवेद्यते नमस्कार! स्वस्वरूपं यथार्थतः।।३३।।

हे! नमस्कार! शान्त मन से अर्थानुसन्धान के साथ जो आपका जप करता है उसे शीघ्र ही यथार्थरूप से अपने स्वरूप का ज्ञान होता है।।३३।।

त्यक्त्वा रागादिजं विश्वं कायोत्सर्गे सुसाधकैः।
आश्रयात्ते नमस्कार! परमात्मा विलोक्यते।।३४।।

हे! नमस्कार सांसरिक राग वगैरे का त्याग करके कायोत्सर्ग में स्थित सुसाधक तुम्हारे ही आश्रय से परमात्मा को देखते हैं।।३४।।

आत्मानं चिन्तयामीह मुक्ताभिमानसंयुतः।
सम्प्राप्य त्वां नमस्कार! ब्रह्मरूपमिवापरम्।।३५।।

हे! नमस्कार तुमको ही प्राप्त करके मैं मुक्त हूँ ऐसे अभिमान से युक्त होकर अपने आपको दूसरा ब्रह्म समझता हूँ।।३५।।

निराकारस्वरूपोऽहं सर्वदेति विभावनात्।
स्वप्रकाशो नमस्कार! ध्याने सम्प्राप्यते मया।।३६।।

हे! नमस्कार! मैं सदा निराकार हूँ ऐसा ज्ञान होने से आपके ध्यान में अपना (आत्म) प्रकाश मिलता है।।३६।।

शुद्धबुद्धस्वभावोऽहं परमेष्ठिसमः सदा।
सञ्चिन्त्येति नमस्कार! निर्विकल्पे स्थितिर्मम।।३७।।

हे! नमस्कार मैं शुद्ध और बुद्ध स्वभाववाला हूँ, अतः परमेष्ठी के समान हूँ, ऐसा चिंतन कर निर्विकल्प में मेरी स्थिरता बनती है।।३७।।

सिद्धरूपः शरीरेऽपि निष्कलः परमार्थतः।
अत एव नमस्कार! ध्येयरूपोऽहमेव हि।।३८।।

शरीर में होते हुए भी मैं परमार्थतः कला (विकार) रहित सिद्धिरूप हूँ। अत एव मैं ही ध्येयरूप हूँ।।।३८।।

ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं त्रितयं नास्ति नास्ति वै।
समापत्तौ नमस्कार! ह्येकोऽहं चिन्मयः सदा।।३९।।

हे! नमस्कार समापत्ति में ध्याता, ध्येय और ध्यान अलग-अलग नहीं होते हैं। उस अवस्था में सिर्फ ज्ञानरूप मैं होता हूँ।।३९।।

नमो मह्यं नमो मह्यं मुक्तोऽहं देहवानपि।
तत्त्वार्थस्ते नमस्कार! सिद्धभावो हि शाश्वतः।।४०।।

मैं देहयुक्त होते हुए भी मुक्त हूँ इसलिये मैं मुझे ही नमस्कार करता हूँ। हे! नमस्कार, शाश्वत सिद्धभाव ही तेरा तात्त्विक अर्थ है।।४०।।

अचिन्त्यशक्तियुक्तत्वात्परमेष्ठिप्रभावतः।
त्वं सत्यं हि नमस्कार! स्वर्गमोक्षविधायकः।।४१।।

हे! नमस्कार तुम अनन्तशक्ति से युक्त हो अतः परमेष्ठि के प्रभाव से सत्त्व में, तुम स्वर्ग और मोक्ष का कारण हो।।४१।।

अयोगयोगसिद्ध्यर्थं सदा सर्वज्ञभाषित!।
त्वां वन्देऽहं नमस्कार! ज्ञानवैराग्यमुक्तिदम्।।४२।।

हे! नमस्कार, तुम ज्ञान-वैराग्य और मुक्ति के देनेवाले हो, अतः हे! सर्वज्ञभाषित नमस्कार! अयोगयोग की सिद्धि के लिए मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ।।४२।।

जगत्सर्वं हि विस्मृत्य योगदृष्ट्या विवेकिनः।
त्वयि लीना नमस्कार! चेष्टन्ते शुष्कपर्णवत्।।४३।।

हे! नमस्कार योगदृष्टि के द्वारा विवेक को उपलब्ध आत्मा पूरे जगत को भूलकर केवल तुझ में लीन हो जाता है। सूखे पत्ते की तरह (सभी सांसारिक) चेष्टा करते हैं।।४३।।

साम्यपीयूषधाराभिः प्रक्षालितमनोमलाः।
त्वच्छक्त्या हि नमस्कार! लयं यान्ति निजात्मनि।।४४।।

हे! नमस्कार समता रूप अमृतधारा से मन के मैल को धोकर विवेकी जन तुम्हारी शक्ति से ही आत्मा में लीन होते हैं।।४४।।

यस्य स्वात्मनि विश्रान्तिस्तव ध्यानाद्धि वर्तते।
स भवेऽस्मिन्नमस्कार! कर्मणा नैव लिप्यते।।४५।।

हे! नमस्कार! जिस आत्मा को तुम्हारे ध्यान से ही आत्मशान्ति उपलब्ध हुई है वह इस संसार में कर्म से लिप्त नहीं होता।।४५।।

त्वयि विश्राम्य तिष्ठामि साक्षिरूपेण सर्वदा।
देहं त्यक्त्वा नमस्कार! महामुक्तिप्रदायक!।।४६।।

हे! महान् मुक्ति देनेवाले नमस्कार, तुझ में मन लगाकर शरीर को भूलकर मैं साक्षीरूप में रहता हूँ।।४६।।

सर्वक्लेशापनोदाय महानन्दपदाय च।
प्रार्थयेऽहं नमस्कार! मम चेतः प्रसादय।।४७।।

सभी क्लेशों को दूर करनेवाले महानन्द को देनेवाले हे! नमस्कार मैं तुम्हें प्रार्थना करता हूँ कि मेरे चित्त को विशुद्ध करो।।४७।।

मम बन्धुर्मम प्राणा मम सर्वस्वमेव हि।
लोके त्वं हि नमस्कार! शपथेन ब्रवीमि ते।।४८।।

हे! नमस्कार मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि इस लोक में तुम्ही मेरे बन्धु हो, मेरे प्राण हो तथा मेरा सर्वस्व (सब कुछ) हो।।४८।।

सद्भक्त्या त्वां प्रपन्नोऽस्मि मत्वैवालम्बनं परम्।
अत एव नमस्कार! रक्ष रक्ष सदा हि माम।।४९।।

तुम्ही मेरा सहारा हो, यह मानकर सद्भक्ति से तुम्हारे शरण में आया हूँ, हे! नमस्कार मेरी रक्षा करो-रक्षा करो।।४९।।

गुरोर्भद्रङ्कराख्यस्य पन्न्यासपदधारिणः।
प्रसादाद्रचिता रम्या नमस्कारस्मृतिर्मया।।५०।।

पंन्यास गुरु श्री भद्रङ्कर विजय की कृपा से मेरे द्वारा यह सुन्दर नमस्कारस्मृति रची गई।।५०।।

।।इति नमस्कारपदावली।।

।।नमस्काराष्टकम्।।

नत्वा वीरं गुरुं भक्त्या जननीं जनकं तथा।
सर्वसिद्धिकरं कुर्वे नमस्काराष्टकं शुभम्।।१।।

भक्तिपूर्वक भगवान् महावीर को, गुरु को एवं माता पिता को नमस्कार करके सभी कार्यों को पूर्ण करनेवाले कल्याणकारक नमस्काराष्टक की रचना करता हूँ।।१।।

महामङ्गलरूपो हि सर्वपापप्रनाशकः।
भुक्तिमुक्तिप्रदः प्रोक्तो नमस्कारो जिनेश्वरैः।।२।।

महामंगलरूप, सभी पापों का नाश करनेवाला, भोग तथा मुक्ति प्रदान करनेवाला नमस्कार है, ऐसा जिनेश्वरों के द्वारा कहा गया है।।२।।

अनादिसिद्धमन्त्रं तं रागादिध्वंसकं मुदा।
कृत्वा नादानुसन्धानं नमस्कारं सदा स्मर।।३।।

अनादि काल से सिद्ध मंत्र जो रागादि दोषों का नाश करके आनंददायी है, नाद का अनुसन्धान करके नमस्कार का हमेशा स्मरण करो।।३।।

नमस्कारेण मन्त्रेण सद्गुरोः कृपया ध्रुवम्।
जायते तत्क्षणादेव मन्त्रचैतन्यमद्भुतम्।।४।।

सद्गुरु की कृपा से नमस्कार मंत्र के द्वारा उसी क्षण मंत्र में अद्भुत संवेदना निर्माण होती है।।४।।

सान्द्रानन्दस्वरूपाय स्वयंस्फुटाय तत्त्वतः।
चैतन्यज्योतिषे तस्मै नमस्काराय मे नमः।।५।।

अमन्द आनन्द स्वरूप, स्वयंभू संपन्न, उस चैतन्यज्योतिषरूप नमस्कार को मैं नमस्कार करता हूँ।।५।।

गुरूपदिष्टमार्गेण भव्यानां भावितात्मनाम्।
स्वानुभूतिर्भवत्येव नमस्कारान्न संशयः।।६।।

गुरु ने उपदेश किये हुये मार्ग से अपनी आत्मा को भावित करनेवाले मनुष्य को नमस्कार मंत्र से आत्मा की अनुभूति होती ही है, इसमें संशय नहीं है।।६।।

अरतिर्विषयग्रामे स्वात्मन्येव रतिः सदा।
जीवन्मुक्तिस्तथा सिद्धिर्नमस्कारस्य सत्फलम्।।७।।

विषयों के संग्रह में आसक्ति का अभाव, हमेशा स्वात्मा में ही लीन रता, जीवन्मुक्ति तथा सिद्धि नमस्कार मंत्र का फल है।।७।।

गुरुप्रसादपूर्णानां प्रशमोपगतात्मनाम्।
नमस्कारे मनो लीनं निर्विकल्पं भवेद्ध्रुवम्।।८।।

जिन्हें गुरु की कृपा तथा आत्मा की शान्ति प्राप्त हुई है, निश्चित ही उनका मन नमस्कार मंत्र में एकाग्र होकर विकल्परहित होता है।

वाच्यवाचकसम्बन्धात्परमेष्ठिमयं खलु।
प्रस्तौमि त्वां नमस्कार! शब्दब्रह्मन्! मुहुर्मुहुः।।९।।

नमस्कार मंत्र वाच्य-वाचक संबंध से यह पंच परमेष्ठिमय है। हे शब्दब्रह्म! नमस्कार! मैं तेरी बार बार स्तुति करता हूँ।

गुरोर्भद्रङ्कराख्यस्य पन्न्यासपदधारिणः।
प्रसादाद्रचितं शीघ्रं नमस्काराष्टकं नवम्।।१०।।

गुरुवर पंन्यास श्री भद्रङ्करविजय महाराज की कृपा से इस नये नमस्काराष्टक की शीघ्र रचना हुई है।।१०।।

आत्मतत्त्वसमीक्षणम्

प्रस्तावना

आशुकवि श्री गिरीशभाई कापडिया 'कल्पेश' द्वारा रचित आत्मतत्त्वसमीक्षणम् में प्रवेश करने से पहले वाचकों के लिये जैन धर्म के कुछ मुख्य सिद्धांतों से अवगत होना आवश्यक है। तब ही इस कृति का मर्म समझ में आयेगा।

जैन धर्म का सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है कि आत्मा की सत्ता स्वतंत्र है। वह शरीर से भिन्न है। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तचारित्र और अनन्तसुख यह चार आत्मा के मूलभूत गुण है। प्रत्येक शरीरधारी प्राणी उपर्युक्त चार मूलभूत गुणों से युक्त स्वतंत्र आत्मा है।

वर्तमान में आत्मा अनादिकालीन कर्मों के आवरणों से आवृत है। कर्म के कारण ही वह विभिन्न देह धारण करता है। मूलतः आत्मा नित्य है फिर भी शरीर के संबंध के कारण उसे जन्म-मरण अवस्था प्राप्त होती है। यह अवस्था देव, मनुष्य, मनुष्येतर प्राणि जगत् तथा-नरकगतिरूप होती है। इस तरह यह संसार अनादि काल से प्रवर्तमान है।

जिसे इस दुःखभरी अवस्था से मुक्ति अभीष्ट है, उसे अपने अनन्तकर्म के बन्धनों को तोडने का प्रयास करना चाहिए।

मुक्ति या मोक्ष का अर्थ है- कर्म से सर्वथा छुटकारा। कर्म से संपूर्ण रूप से मुक्त आत्मा का संसार में पुनरागमन कभी नहीं होता।

'अनेकान्तवाद' जैनदर्शन का महत्त्वपूर्ण प्रदान है। जो पदार्थ के दो विरुद्ध धर्मों के साथ अस्तित्व का स्वीकार करता है। अनेकान्तवाद के अनुसार एक और अनेक ये विरुद्ध प्रतीत होनेवाले धर्म वस्तुतः पदार्थ एक भाग ही है। इस कृति में आत्मा के एकत्व की विचारणा अनेकान्तवाद के संदर्भ में प्रस्तुत की गई है।

मुझे यह विश्वास है कि इस विकास प्रक्रिया का अभ्यास करने पर किसी भी व्यक्ति को आत्मा का सही स्वभाव का स्पष्ट होगा।

जी. जी. भागवत

।।आत्मतत्त्वसमीक्षणम्।।

नत्वा वीरं गुरुं भक्त्या जननीं जनकं तथा।
सर्वहिताय कुर्वेऽहमात्मतत्त्वसमीक्षणम्।।१।।

भगवान् महावीर, गुरु एवं माता-पिता को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके सभी के हित के लिए आत्मतत्त्व समीक्षण की रचना करता हूँ।।१।।

आत्मज्ञानादवाप्नोति वैराग्यं ज्ञानगर्भितम्।
विषयाँस्तु तदा त्यक्त्वा मुक्तिं काङ्क्षति साधकः।।२।।

आत्मज्ञान से ही ज्ञान से गर्भित वैराग्य उत्पन्न होता है। उस समय साधक विषयों का त्याग करके मोक्ष की इच्छा करता है।।२।।

क्षमादिदशधा धर्मं ततः स्वीकृत्य भावतः।
पृथक्कृत्य सदा देहं चिद्रूपे सोऽवतिष्ठते।।३।।

इसके बाद क्षमा आदि दशधर्मों को भाव से स्वीकार करके देह को आत्मा से अलग करके व्यक्ति अपने आप ज्ञानरूप में स्थिर हो जाता है।।३।।

आत्मानं साक्षिभावेन संस्थाप्य चिदि कोविदः।
जीवन्मुक्त इवाभाति चैतन्यभावनायुतः।।४।।

वह बुद्धिमान् व्यक्ति साक्षिभाव से आत्मा को ज्ञान (चित्) में स्थापन कर के चैतन्यभाव से युक्त (होकर) जीवन्मुक्त जैसा लगता है।।४।।

निःसङ्गश्च निराकारो बन्धमुक्तः सदा शुचिः।
न कर्ता न च भोक्ता वै सर्वद्वन्द्वविवर्जितः।।५।।

(वह) सर्व संग से मुक्त होता हैं, सर्व आकार से रहित होता है। सर्व बन्धनों से मुक्त होता है, सदा पवित्र होता है। (इस तरह) राग-द्वेष, जन्म-मृत्यु, प्रीति-

अप्रीति, जैसे सभी द्वन्द्वों से मुक्त होता है (अत एव) वह न तो (किसी क्रिया का) कर्ता होता है न ही (किसी क्रिया के फल का) भोक्ता होता है।।५।।

स्वात्मबोधादिदं विश्वं स्वप्नवत्स च पश्यति।
परानन्दनिमग्नस्तु जायते पूर्ण एव हि।।६।।

आत्मबोध होने के कारण वह संसार को स्वप्न के समान मिथ्या समझता है तथा परमानन्द की अनुभूति करके पूर्णता प्राप्त करता है।।६।।

शुद्धबुद्धस्वरूपं स निजं ज्ञात्वा विवेकतः।
देहाभिमानमुत्सृज्य त्यजति क्षुद्रचित्तताम्।।७।।

विवेक (देहात्म भेद ज्ञान) के कारण वह अपना शुद्ध और बुद्ध (ज्ञानमय) स्वरूप जानकर देह के अभिमान (मैं देह हूँ ऐसा मिथ्याज्ञान) को छोडकर क्षुद्र चित्तता का त्याग करता है।।७।।

एवं मुक्ताभिमानी स सर्वत्रैवाक्रियः सदा।
सर्वभ्रमैर्विनिर्मुक्तो देहे मुक्तो हि तिष्ठति।।८।।

इस प्रकार वह (साधक) अभिमान से मुक्त होकर, हर सांसारिक क्रिया से (उपेक्षा भाव) रहित सभी मिथ्याज्ञान से मुक्त होकर शरीर रहते हुए भी मुक्त होता है।।८।।

निर्मलो निस्तरङ्गः स चिद्विलासपरायणः।
साकारं सकलं त्यक्त्वा निराकारेऽवतिष्ठते।।९।।

ऐसा ज्ञानी आध्यात्मिक पुरूष निर्मल और पूर्ण शान्त होता है, वह सभी सांसारिक वस्तुओं का त्याग करके निराकार ज्ञान में स्थित होता है।।९।।

मोहविडम्बनामुक्तो ममत्वरहितो हि सः।
प्रपश्यति स्वरूपं तु स्वात्मनि परमात्मनः।।१०।।

इस प्रकार सांसारिक माया-मोह कृत विडंबना से मुक्त ममता रहित हुआ वह (साधक) आत्मा में ही परमात्मा के स्वरूप का दर्शन करता है।।१०।।

ततः स ज्ञानयोगेन स्वात्मालम्बनयोगतः।
शुद्धचिन्मात्रविश्रान्तिं शीघ्रमेवाधिगच्छति।।११।।

तदनन्तर वह (साधक) ज्ञानयोग से अपनी आत्मा का आलम्बन लेकर शीघ्र ही शुद्ध ज्ञान रूप में विश्रान्ति प्राप्त करता है।।११।।

अद्वैतं भावयन्नेवं सर्वत्र समभावतः।
निराकाङ्क्षी भवे मोक्षे जायते मुनिपुङ्गवः।।१२।।

इस प्रकार अद्वैत की भावना करते हुए सभी जगह समभाव पैदा होने के कारण वह श्रेष्ठ मुनि मोक्ष के विषय में या संसार के विषय में आकांक्षारहित हो जाता है।।१२।।

द्वैतमूलात्समुत्पन्नं दुःखं तस्य विनश्यति।
चिद्रसामृतमग्नः स परमं सुखमश्नुते।।१३।।

द्वैत से उत्पन्न हुआ (यह मेरा है इत्यात्मक ज्ञान से) दुःख समाप्त हो जाता हैं तथा ज्ञानामृत रस में मग्न होकर वह परम सुख भोगता है।।१३।।

आत्मानं शाश्वतं ज्ञात्वा जगद्वृत्तं विनश्वरम्।
विवेकी जायते शीघ्रमर्थकामपराङ्मुखः।।१४।।

आत्मा की अविनाशिता और जगद् को नाशवान् समझकर विवेकी साधक शीघ्र ही अर्थ और काम के प्रति उदासीन हो जाता है।।१४।।

प्राप्ते तु शुद्धचैतन्ये ममत्वं विनिवर्तते।
विरक्तिर्जायते पूर्णा नित्यानित्यविवेकिनः।।१५।।

नित्य और अनित्य के विचार करनेवाले साधक को शुद्ध चैतन्य प्राप्त होने पर ममता का शमन और विरक्ति की पूर्णता आती है।।१५।।

ज्ञात्वा जडं शरीरं यः पुद्गलेषु न मुह्यति।
क्षुभ्यति ज्ञानतृप्तः स किं मृत्यौ समुपस्थिते।।१६।।

जो शरीर को जड समझकर शरीर पर मोह नहीं रखता तथा जो ज्ञान से सन्तुष्ट है, वह मृत्यु के समय में क्यों घबराये?।।१६।।

ग्रामेऽथवा वने तस्य कोऽपि भेदो न विद्यते।
समशीलः स सर्वत्र सर्वदैव न संशयः।।१७।।

(साधक) गाँव हो या जंगल उसके लिए दोनों में अन्तर नहीं है। वह तो हर समय और हर जगह को समान भाव से ही देखता है क्योंकि उसने समता को पा लिया है।।१७।।

आलम्ब्य समतां धीरो निन्दायां संस्तवे समः।
कुरुते नैव मोक्षार्थी रोषं तोषं कदाचन।।१८।।

धैर्यवान् साधक समता को धारण कर के निन्दा तथा प्रशंसा दोनों समय समान रहता है, वह न तो दुःख में किसी पर क्रोध करता है और न ही सुख में अति प्रसन्न होता है।।१८।।

उपादेयं न वा हेयं यस्य विश्वे चराचरे।
इष्टानिष्टविकल्पो न कर्मणा किं स लिप्यते।।१९।।

जिसके लिए इस स्थावर-जंगम संसार में न कोई त्याज्य है न ही ग्राह्य है, न कोई इष्ट है न तो कोई अनिष्ट, वह भला कर्म से कैसे बँध सकता है?।।१९।।

संस्थितः परमे स्थाने योगी हर्षं न गच्छति।
तथैव सर्वनाशेऽपि तस्य शोको न जायते।।२०।।

जैसे योगी पुरुष सर्वोच्च स्थान को प्राप्त करके भी प्रसन्न नहीं होता वैसे ही सब कुछ चले जाने पर भी कोई शोक नहीं करता।।२०।।

सर्वसङ्गपरित्यागादसङ्गो जायते ध्रुवम्।
समत्वयोगसंसिद्धौ समः सर्वत्र साधकः।।२१।।

संसार का परित्याग करके साधक एकाकी भाव को स्वीकार करता है। वह समत्व योग की सिद्धि होने पर हर जगह समता भाववाला होता है।।२१।।

यः परात्मा स एवाहं कश्चिज्जानाति तत्त्वतः।
'सोऽहं' भावे तु सञ्जाते न भयं कुत्रचिदहो।।२२।।

कोई तत्त्वज्ञानी ही जो परमात्मा है वही मैं हूँ ऐसा जानता है और मैं वही हूँ ऐसा भाव हो जाने पर उसे कहीं भी भय नहीं होता।।२२।।

प्रवृत्तौ समता किन्तु परिणामविभेदतः।
अज्ञानी लिप्यते यत्र ज्ञानी तत्र न लिप्यते।।२३।।

ज्ञानी और अज्ञानी की प्रवृत्ति संसार में समान होती हैं किन्तु परिणाम अलग-अलग होते हैं। ज्ञानी सांसारिक वातावरण से मुक्त रहते हैं, अज्ञानी उसमें लीन दिखते हैं।।२३।।

आत्मस्थो लिप्यते नैव पुण्यपापैः कदाचन।
आकाशं खलु धूमेन पद्मपत्रं यथाम्भसा।।२४।।

आत्मस्थ (आत्मज्ञानी) कभीभी पुण्य या पाप से नहीं बँधते, जैसे धूम से आकाश तथा जल से पद्मपत्र निर्लिप्त रहता है।।२४।।

अनेकान्ते सुनिष्णातो द्वैताद्वैतविशारदः।
स्वस्वरूपे लयं याति सत्वरं नात्र संशयः।।२५।।

द्वैत-अद्वैत आदि दर्शनों के पण्डित अनेकान्त (जैन) दर्शन के तत्त्वज्ञ ही (आत्मा) अपने-अपने स्वरूप में शीघ्र ही लीन हो जाता हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२५।।

वीतरागः सदा मुक्तः कर्मबन्धस्तु रागिणः।
'नाऽहं' 'न मम' तस्माद्धि मोक्षमन्त्रः प्रकीर्तितः।।२६।।

वीतराग सदा मुक्त होते हैं रागी सदा कर्मबन्धन में बँधे रहते हैं और इसलिए न मैं (शरीर) हूँ न मेरा (धन आदि) है यह मोक्षमन्त्र कहा गया है।।२६।।

ज्ञानगर्भितवैराग्यात्परमोपशमस्तथा।
क्षपणं सर्वकर्मणां भव्यस्यैव यथार्थतः।।२७।।

वस्तुतः भव्य का ही ज्ञानयुक्त वैराग्य से सभी कर्मों का क्षय-उपशम होकर नाश होता है।।२७।।

वासना एव संसारो मुक्तिस्तत्त्यागतो मता।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वासनारहितो भव।।२८।।

वासना ही संसार है तथा उसके त्याग से ही मुक्ति है। अतः सभी प्रयत्नों से वासनामुक्त होवें।।२८।।

वासनात्यागमात्रेण स्वरूपावस्थितिं क्षणात्।
स्वयं करोति सम्यग् वै तदात्मा गुरुरात्मनः।।२९।।

ज्ञानी वासना मात्र के त्याग से स्वयं ही क्षणभर में अपनी आत्मा को अपने स्वरूप में भलीभांति स्थित कर लेते हैं। अतः आत्मा ही आत्मा का गुरु है।।२९।।

अनित्यं हि जगत्सर्वं यो पश्यतीन्द्रजालवत्।
आश्रित्य ज्ञानवैराग्यं स सौख्यं लभते परम्।।३०।।

जो इस संसार को इन्द्रजाल के समान अनित्य देखता है, वह ज्ञानगर्भ वैराग्य का आश्रय लेकर मोक्ष को प्राप्त करता है।।३०।।

अर्थं कामं च सन्त्यज्य धर्मे मोक्षे सदा रुचिम्।
विदधाति नरः प्राज्ञस्तस्य मोक्षः सुनिश्चितः।।३१।।

जो बुद्धिमान् मनुष्य अर्थ और काम का त्याग करके मोक्ष की अभिलाषा रखता है उस साधक का मोक्ष निश्चित है।।३१।।

असंसक्तः सुखी लोके संसक्तो दुःखभाक् सदा।
तस्मान्नित्यं सुखं तस्य मतं प्रौढविरागिणः।।३२।।

जो इस संसाररूप माया मोह से बँधे हैं वे दुःखी हैं तथा जो इस जाल से अलग हो गये वे सुखी हैं। इसलिए संसार से जिसका लगाव अलग हो गया उस विरागी को ही नित्य सुख (मोक्ष) मिलता है।।३२।।

तस्यैव बन्धविश्लेषस्तत्त्वज्ञैः प्रतिपादितः।
निश्चयो जायते यस्य 'नाऽहं वपुर्न मे वपुः'।।३३।।

मैं शरीर नहीं हूँ और यह शरीर मेरा नहीं है जिसको ऐसा निश्चय हो गया है, तत्त्वज्ञों ने उसे ही कर्मबन्ध से मुक्त माना है।।३३।।

आत्मन्येव सदा लीनो देहेऽपि विगतस्पृहः।
राजते योगिराजस्तु निर्विकल्पो निरञ्जनः।।३४।।

जो योगीराज सतत आत्मचिन्तन में ही लीन रहता हैं, जिसे अपने शरीर का भी मोह नहीं रहता, वही निर्मोही–निर्लिप्त शोभता है।।३४।।

सर्वचिन्तापरित्यागाद्भवेदन्तर्मुखं मनः।
विषयेषु न च प्रीतिस्तदा तत्त्वं प्रकाशते।।३५।।

सभी विचारों को छोडने से मन अन्तर्मुख होता है तथा सांसारिक विषयों से अलिप्त होने से आत्मतत्त्व प्रकाशित होता हैं, अर्थात् आत्मसाक्षात्कार होता है।।३५।।

साधुत्वे हि मनःस्वास्थ्यं विद्यते परमार्थतः।
तेन समत्वभावेन वर्तते स हि साधकः।।३६।।

सत्य (आत्मा) की उपलब्धि होने पर ही वास्तविक मनःस्वास्थ्य होता है। तब आत्मोपलब्धि होने पर वह साधक समभाव में रहता है।।३६।।

देहस्थयोगिनः सर्वे द्रव्यतो योगिनो मताः।
देहातीता हि ये ते तु भावतो योगिनो ध्रुवम्।।३७।।

देहधारी (आत्मा और शरीर को अभेद माननेवाले) द्रव्य से योगी होते हैं जब कि आत्मतत्त्व को शरीर से पृथक् अनुभव करने वाले निश्चय ही भाव से योगी होते हैं।।३७।।

चिन्ताचेष्टापरित्यागादनायासेन जायते।
स्वस्वरूपे लयस्तस्माच्छुभाशुभमलक्षयः।।३८।।

शारीरिक चेष्टा और सांसारिक चिन्ता के परित्याग मात्र से अनायास ही मन आत्मतत्त्व में मिल जाता है। उसके बाद समस्त शुभ और अशुभ कर्मों का क्षय होता है।।३८।।

वैरस्यं यस्य संसारे हृषीकार्थे शुभाशुभे।
तस्यैव जायते चित्तं लीनं स्वात्मनि सत्वरम्।।३९।।

सभी शुभ अथवा अशुभ इन्द्रिय के विषयो में जिस साधक का मन विमुख हो गया उसी का मन शीघ्र ही आत्मा में लीन हो जाता है।।३९।।

रागद्वेषादिदोषास्तु मनोधर्मा उदाहृताः।
विनाशो कीर्तितस्तेषां मनोनाशे तु निश्चितः।।४०।।

रागद्वेष वगैरह दोष मन का धर्म कहे गये हैं जिनका मन के नाश से निश्चित ही क्षय होता है।।४०।।

सर्वभावेषु विज्ञाय ममत्वं बन्धकारणम्।
निर्ममो जायते योगी विकल्परहितो ध्रुवम्।।४१।।

चारो तरफ से विचार कर देखा गया है कि संसार में ममत्व (यह मेरा है/मैं शरीर हूँ) की भावना ही बन्ध का कारण है तथा ममत्व को छोडने से योगी विकल्प से रहित हो जाता है।।४१।।

आत्मा ज्ञानस्वरूपोऽयं निश्चयाद्बन्धवर्जितः।
निरपेक्षः सदा साक्षी निर्विकारः स्वभावतः।।४२।।

बन्ध-मोक्ष से परे यह आत्मा सदा निरपेक्ष भाववाला (कर्म का) साक्षी है जो स्वभाव से ही निर्विकार है।।४२।।

स्मरणं लोकभावानां क्रमेणाभ्यासयोगतः।
योगिनो ह्यात्मनिष्ठस्य क्षीयते शुन्यचेतसः।।४३।।

जिनका चित्त शून्य हो गया है ऐसे गहरे ध्यानवाले आत्मनिष्ठ योगियों का योगाभ्यास से क्रमेण (धीरे-धीरे) संसार लोक के भाव के स्मरण को क्षीण होता देखता है।।४३।।

हर्षशोकविहीनो यः सर्वत्र समतां गतः।
चिन्मात्रसमाधौ तु लक्ष्यते ध्येयसन्निभः।।४४।।

जो ध्यानी हर्ष और शोक दोनों को समान समझकर हर जगह समान भाव रखता है, वह आत्मज्ञान रूप समाधि में अपने ध्येय समान दिखा है।।४४।।

स्वशरीराद्यदा भिन्नं स्वात्मानं ननु पश्यति।
तदा योगविधिः सम्यक् जायते नात्र संशयः।।४५।।

जब अपने शरीर से अपनी आत्मा भिन्न है ऐसा ज्ञान होता है तब निस्सन्देह योगविधि पूर्ण हो गया है यह समझें।।४५।।

सर्वद्वन्द्वैर्मनो मुक्तं निर्विचारं भवेद्यदा।
तदा स्पृहाविनाशाद्धि निरायासेन निर्वृतिः।।४६।।

जब मन सभी विचारों से मुक्त होकर निर्विचार हो जाता है तब स्पृहा (इच्छा) नहीं होती तथा स्पृहा के नाश से अपने आप निर्वृत्ति हो जाती है।।४६।।

सर्वविस्मरणान्नष्टे संसारविटपाङ्कुरे।
जायते न पुनर्योगी विमुक्तो भवकाननात्।।४७।।

सभी वस्तुओं के विस्मरण से संसाररूपी वृक्ष का अङ्कुर नष्ट हो जाता है तथा उसके नष्ट होने पर योगी संसाररूप वन से मुक्त होकर पुनः जन्म धारण नहीं करता।।४७।।

कर्मसंन्यासिनः शीघ्रं सर्ववृत्तिविरामतः।
स्पन्दशून्यं भवेच्चित्तं सुलीनं स्वात्मनि स्वयम्।।४८।।

कर्म से विरक्त योगी, शीघ्र ही सभी वृत्तियों (क्रियाओं) से विरमित होने से मन स्पन्दशून्य (सर्वथा शान्त) होकर स्वयं ही अपनी आत्मा में लीन हो जाता है।।४८।।

विश्रान्तिमागतः स्वस्मिन्मनोनाशाद्धि योगवित्।
तिष्ठति देहमध्येऽपि घृतकुम्भे यथा जलम्।।४९।।

योग को जाननेवाले साधक की आत्मा मन के नाश (पूर्ण शान्त) होने से विश्राम प्राप्त करती हैं तथा अलिप्तभाव से शरीर में रहती हैं जैसे घी के घडे में पानी रहता है।।४९।।

सम्प्राप्ते खलु नैराश्ये सर्वत्रैव विवेकतः।
मुक्तयेऽपि न चिन्ता स्याद्योगिनो निःस्पृहस्य वै।।५०।।

विवेक से विराग प्राप्त होने पर निस्पृह योगि को मोक्ष की भी चिन्ता नहीं रहती है।।५०।।

स्वाच्छन्द्यं साधकानां तु यत्तन्त्रे प्रतिपादितम्।
जानन्ति विरलाः केचिल्लोकोत्तरा हि योगिनः।।५१।।

शास्त्रों में स्वच्छन्दता साधकों के लिए कही गई है। उसे कोई विरल और लोकोत्तर योगी ही जानते हैं।।५१।।

सर्वसङ्कल्पहीनो वै स्वात्मैकरतितत्परः।
समावेशात्समाधौ स्याद्योगीन्द्रो जिनसन्निभः।।५२।।

जो साधक अन्य सभी प्रकार के धर्माचरण से हीन होते हुए भी अनन्यभाव से आत्मप्रेमी है वह समाधि में प्रवेश करने पर वे जिन के समान हो जाते हैं।।५२।।

मनःशान्त्या समाधिस्तु जायते तत्त्वनिश्चयात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नैस्तु कर्तव्यस्तत्त्वनिश्चयः।।५३।।

विचारों का पूर्णरूप से उपशम होने से चित्त शान्त होता है। जिससे तत्त्व का निश्चय होता है। तत्त्व के निर्णय (आत्मज्ञान) से समाधि होती है। अतः सभी प्रयत्नों से आत्मज्ञान करें।।५३।।

गुरोर्भद्रङ्कराख्यस्य पन्न्यासपदधारिणः।
प्रसादाद्रचितं शीघ्रमात्मतत्त्वसमीक्षणम्।।५४।।

मेरे गुरु पंन्यास श्री भद्रङ्करविजयजी म.सा. की कृपा से (आशीर्वाद से) आत्मतत्त्वसमीक्षणम् नामक इस ग्रन्थ की रचना शीघ्र ही संभव हो पायी।।५४।।

।।इति आत्मतत्त्वसमीक्षणम्।।

आशाप्रेमस्तुतिः

।।समर्पणम्।।

आशे येषां प्रसादात्ते सञ्जातं वेदनं क्षणात्।
'आशाप्रेमस्तुतिः' प्रेम्णा मया तेभ्यस्समर्प्यते।।

आशे! जिनकी कृपा से एक क्षण में तेरा साक्षात्कार हुआ,
उस महापुरुष को
'आशाप्रेमस्तुति' समर्पित करता हूँ।

विषयप्रवेश

प्रस्तुत आशाप्रेमस्तुति पण्डित गिरीशकुमार परमानन्द शाह रचित अप्रकाशित काव्यकृति आशाविलासतन्त्र का एक भाग है।

इस काव्य में 'आशा' शब्द 'कुण्डलिनीशक्ति' तथा 'गिरीश' शब्द 'शिव' के नाम का निर्देश करता है। कवि ने इस काव्य में उत्साहपूर्वक और धर्मनिष्ठता से कुण्डलिनी शक्ति की स्तुति की है। उस समय पूजा से जागृत होकर देवता महत्त्वाकांक्षियों को अमानवीय शक्तियाँ प्रदान करते हैं। इस कार्य को करते समय कवि ने काव्य की दृष्टि से 'शिव' और 'शक्ति' की एकता को दर्शाने का अच्छा प्रयास किया है।

इसी के साथ इस छोटी कृति में ऐसी शक्तियों की प्राप्ति के लिये गुप्त मार्ग से जादूई और आध्यात्मिक सिद्धांतों को समझाया है।

आध्यात्मिक तन्त्रशास्त्र के निष्णात इस कृति का केवल उपभोग लेकर इसके रस की प्रशंसा कर सकते हैं। तन्त्रविद्या के पुस्तकों के प्रगाढ अभ्यास के बिना इस काव्य के श्लोकों के अर्थ को समझना बहुत कठिन है।

अन्त में लेखक के साथ विचार विमर्ष करके अंग्रेजी जाननेवाले इस कृति को समझ सकें, इस तरह से शाब्दिक भाषांतर उपलब्ध किया है।

मैं आशा करता हूँ कि तन्त्रतत्त्वज्ञान में जो निपुण है उनको यह कृति उपयोगी होगी।

जी. जी. भागवत

।।आशाप्रेमस्तुतिः।।

नत्वा वीरं गुरुं भक्त्या जननीं जनकं तथा।
आशाप्रेमस्तुतिर्दिव्या तन्त्रदृष्ट्या विरच्यते।।१।।

भगवान् महावीर को, गुरु को, माता-पिता को भक्तिपूर्वक नामस्कार करके तांत्रिक दृष्टि से आशाप्रेमस्तुतिः नामक दिव्य स्तुति ग्रंथ की रचना करता हूँ। ।।१।।

कृत्वा रसात्मकं काव्यं प्रसन्नहृदयोर्मिभिः।
पादप्रक्षालनं नित्यमाशे! भक्त्या करोमि ते।।२।।

इस भावनात्मक काव्य की रचना करने के बाद हृदय में उठे तरंगों से हे आशे! (=कुण्डलिनी) भक्तिपूर्वक मैं तेरे चरणों का प्रक्षालन करता हूँ। ।।२।।

आशेऽहं कृतपुण्यश्च लोके धन्यतमो ध्रुवम्।
त्वामाराध्यामतस्स्तोतुं भारती मे प्रवर्तते।।३।।

हे आशे! मैं पुण्यशाली और भाग्यवान हूँ कि तुम जैसी आराध्या की स्तुति करने में मेरी वाणी प्रवृत्त (मुखरित) होती है। ।।३।।

आशे! त्वदीयसौन्दर्यं मत्वा पीयूषमद्भुतम्।
प्रेमपात्रे समादाय नेत्राभ्यां पीयते मया।।४।।

हे आशे! तुम्हारे अद्भुत सौन्दर्य को अमृत समझकर प्रेमपात्र में लेकर मेरी दोनों आँखों से पीता हूँ। ।।४।।

एकाग्रमनसा ध्यात्वा त्वामेवाशे! जितेन्द्रियः।
महावाणीपतिस्साक्षाज्जायते नात्र संशयः।।५।।

हे आशे! जो साधक इन्द्रियों पर विजय पाकर एकाग्र मन से तेरा ध्यान करता है, वह निःसंदेह महान् वाचस्पति हो जाता है। ।।५।।

आशे! त्वदीयदेहस्य स्तोतुं लावण्यमद्भुतम्।
प्रवृत्ताः कवयो जोषमुपमानं विना स्थिताः।।६।।

हे आशे! तुम्हारे शरीर के अद्भुत लावण्य की स्तुति करने के लिए कवि लोग प्रवृत्त हुए किंतु उपमान के विना उनका आनन्द थम सा गया। ।।६।।

आशे! त्वां भावतो दृष्ट्वा गिरीशोऽपि विमोहितः।
प्रियतामग्नचित्तेन जायते ध्यानतत्परः।।७।।

हे आशे! गिरीश (शंकर) भी तुझे भाव से देखकर मुग्ध हो गये और उनका चित्त तेरे प्रेम में इतना डूब गया कि वे ध्यान में एकाग्र हो गये। ।।७।।

विलासैर्विविधैर्मन्ये कामप्रीतिविधायकैः।
आशे! त्वमेव मच्चित्ते रमसे परितुष्टये।।८।।

हे आशे! मेरा तो मानना है कि इच्छा और प्रेम को विधान करने वाली तुम ही अनेक हावभावों से मेरे चित्त में मेरे संतोष के लिए रमण करती हो। ।।८।।

आशे! हृन्मेलनं सम्यक् सामरस्यं यदुच्यते।
तस्यैवानुभवान्मन्ये दृढानुरागसम्भवः।।९।।

हे आशे! हृदय का मिलन जो समरसता कहा जाता है, उसी के अनुभव से दृढ अनुराग उत्पन्न होता है, ऐसा मेरा मानना है। ।।९।।

कुरुषे मयि निर्व्याजं त्वमेव प्रेम सन्ततम्।
तस्मादाशे! स्तुतिस्तेऽपि मम क्लेशविनाशिनी।।१०।।

हे आशे! तुम हमेशा मुझ से निश्छल प्रेम करती हो, इसलिए तुम्हारी स्तुति मेरे मनःसंताप को दूर करनेवाली है। ।।१०।।

आशे! प्राणप्रयोगेण सामरस्यमुपागतम्।
प्रेम्णा त्वय्येव संसक्तं जायते विमलं मनः।।११।।

हे आशे! प्राणायाम करने से मेरा मन समरसता को प्राप्त हुआ, अतः प्रेम के कारण मेरा निर्मल मन तुम में ही लीन हो जाता है। ।।११।।

आशे! त्वं कुशला लोके कलासु नात्र संशयः।
कलादेवीमतो मत्वा त्वां भजन्ते जनास्सदा।।१२।।

हे आशे! लोक में कलाओं में तुम कुशल (प्रवीण) हो। तुम्हें कलादेवी समझकर लोग तुम्हे हमेशा भजते हैं। ।।१२।।

आशे! ते हावभावैस्तु प्रसन्ने हृदये मम।
उत्थिता लहरी काऽपि चिदानन्दं प्रयच्छति।।१३।।

हे आशे! तुम्हारे हाव-भावों से मुझ पर प्रसन्न होने पर हृदय में एक लहर जैसी उठी हुई मुझे ब्रह्मानन्द का आस्वाद कराती है। ।।१३।।

नित्यानन्दमयीं देवीं तत्त्वज्ञानप्रदायिनीम्।
आशे! त्वां सर्वभावेन शुचिस्मिते भजाम्यहम्।।१४।।

तत्त्वज्ञान एवं शाश्वत आनन्द को देनेवाली, मधुर मुस्कानवाली देवी आशे! मैं तुम्हारे सर्वभाव (सायुज्यता) से पूजा करता हूँ। ।।१४।।

आशे! त्वयि प्रसन्नायां फलन्ति कामपादयाः।
प्राप्यते ब्रह्मविज्ञानमात्माऽयं भासते स्फुटम्।।१५।।

हे आशे! तुम्हारे प्रसन्न होने पर मेरे कामवृक्ष फल प्राप्त करते हैं। (अर्थात् कुण्डलिनी के जागृत होने पर मनोरथ सफल होते हैं) ब्रह्मज्ञान होता है, आत्मा स्पष्टरूप से प्रकाशित होती है। ।।१५।।

मार्गं कृत्वा कटाक्षेण मन्ये शीघ्रं हि वेगतः।
आशे! त्वं हृदयाम्भोजे निविष्टा भ्रमरीव मे।।१६।।

हे आशे! मैं मानता हूँ कि तुम अपनी कटाक्ष से प्रवेश मार्ग बनाकर बहुत जल्द ही मेरे हृदयकमल पर भ्रमरी की तरह बहुत वेग से बैठ गयी हो। ।।१६।।

वचनामृतवर्षेण तत्त्वचिन्तनहेतवे।
आशे! त्वं शीतलं सद्यः करोषि मम मानसम्।।१७।।

हे आशे! तत्त्वचिंतन के लिए अमृत जैसे वचन की वर्षा करके तुम मेरे (संतप्त) मन को सद्यः शीतल करती हो। ।।१७।।

स्फुरणमात्मतत्त्वस्य चित्ते शुद्धे भवेदतः।
त्वयि संस्थाप्य मच्चित्तमाशे! संशोधयाम्यहम्।।१८।।

हे आशे! आत्मतत्त्व का स्फुरण चित्त के शुद्ध होने पर होता है, अतः तुझमें मेरा मन लगाकर अर्थात् तुम्हारा ध्यान करके मैं अपने चित्त का शोधन करता हूँ। ।।१८।।

आशे! त्वं परमा शक्तिर्गिरीशसहचारिणी।
तस्य प्राणप्रिया धन्या सोऽपि तृप्तस्त्वया सदा।।१९।।

हे आशे! तुम सर्वोत्कृष्टा शक्ति हो, भगवान् शंकर के साथ रहनेवाली हो, तुम भाग्यवती उनकी पत्नी हो, वे भी सदा तुमसे तृप्त हुये। (अर्थात् वह भी तुम्हारा ध्यान करते हैं।) ।।१९।।

आशे! त्वद्ध्यानमग्नोऽहं पुलकाङ्कितविग्रहः।
विस्मरामि जगत्सर्वं बहिस्संवेदनाक्षमः।।२०।।

हे आशे! मैं तुम्हारे ध्यान में मग्न हूँ, शरीर रोमांचित हो गया है, किसी भी बाह्य वस्तु को जानने में अक्षम होने से संस्कार को भूल रहा हूँ। ।।२०।।

त्वयि चित्तं समाधाय शुद्धभावेन सन्ततम्।
आशे! सद्यो गिरीशोऽपि लभते ज्ञानमुत्तमम्।।२१।।

हे आशे! भगवान् शंकर भी लगातार शुद्धभाव से तुम्हारा ध्यान करके तुरंत ही उत्तम ध्यान को प्राप्त करते है। ।।२१।।

अशक्तो विरहं सोढुमेकान्ते मीलितेक्षणः।
आशे! त्वां हि सदा चित्ते ध्यायामि प्राणवल्लभाम्।।२२।।

हे आशे! तुम्हारा वियोग सहन करने में मै असमर्थ हूँ, तुम मेरी प्राणप्रिया हो, एकान्त में आँखे बन्द करके मैं तुम्हारा मन में सदा ध्यान करता हूँ। ।।२२।।

आशे! त्वं सर्वभावज्ञा परमानन्दरूपिणी।
ऐकात्म्यं तु गता साक्षाल्लीना मे हृदये ध्रुवम्।।२३।।

हे आशे! तुम सभी मनोगतभावों को जाननेवाली हो, परमानन्दरूपा हो,

(आह्लादक) कांतिवाली हो, सचमुच (तुम) मेरे हृदय में निश्चित ही लीन होकर एकात्म हो गयी हो। ।।२३।।

आशे! ते परमं प्रेम संवीक्ष्य विस्मितस्सदा।
ध्यायामि त्वामहं चित्ते सङ्गमस्ते भवेद्यथा।।२४।।

हे आशे! तुम्हारे उत्कट प्रेम को देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया, मैं तुम्हारा ध्यान करता हूँ, जिससे मन में तुम्हारा साथ सतत रहे। ।।२४।।

आशे! तेऽनुनयं कुर्वे वचनैः प्रेमगर्भितैः।
परिरम्भादिदानेन रमस्व त्वं समं मया।।२५।।

हे आशे! प्रेमभरे वचनों से मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ, कि तुम आलिंगन करते हुये मेरे साथ रमण करो। ।।२५।।

आशे! स्मृत्वा विलासाँस्ते तव ध्यानेऽतितत्परः।
परां शान्तिमहं यामि विलीनकरणाशयः।।२६।।

हे आशे! तुम्हारे ध्यान में लीन होने पर तुम्हारे हाव-भाव को याद करके विचारों में खोकर मैं परमशान्ति प्राप्त करता हूँ। ।।२६।।

त्वत्प्राणस्त्वन्मना आशे! निमील्य मे विलोचने।
ध्यानयोगेन पश्यामि त्वामेवोपागतामिव।।२७।।

हे आशे! तुम ही मेरा प्राण एवं मन हो, आँखे बन्द करके ध्यानयोग से देखता हूँ कि तुम मेरे पास आयी हो। ।।२७।।

आशे! प्रसन्नचित्तोऽहं वचनैस्ते नयान्वितैः।
जानामि त्वत्प्रसादेन प्रेमरीतिं मनोहराम्।।२८।।

हे आशे! तुम्हारी नीतिपूर्ण बातों से मेरा मन प्रसन्न है तथा तुम्हारी कृपा से मैं प्रेम की मनोहर रीति को जानता हूँ। ।।२८।।

आशे! त्वत्प्रेम संवीक्ष्य ज्ञात्वा वै चरितं शुभम्।
आत्मानन्दरसे लीनं मनो मे जायते क्षणात्।।२९।।

हे आशे! तुम्हारे प्रेम को देखकर तथा तुम्हारे शुभचरित्र को जानकर मेरा मन तुरंत ही आत्मानन्द के रस में मग्न हो जाता है। ।।२९।।

आशे! त्वां सततं स्तोतुं मन्येऽहं विमलाशयाम्।
कुर्वन्ति वै सदा यत्नं सर्वे शास्त्रविचक्षणाः।।३०।।

हे आशे! तुम निर्मल मनवाली हो, सभी विद्वान् तुम्हारी स्तुति करने की सतत चेष्टा करते हैं; ऐसा मैं मानता हूँ। ।।३०।।

आविर्भूय मनोभूमौ मन्ये प्रेमस्वरूपिणीम्।
आशे! हास्यविनोदैस्त्वं रमसे सहितं मया।।३१।।

हे आशे! तुम प्रेम की प्रतिमा हो, मैं मानता हूँ कि तुम मेरे मन में आकर हास्य विनोद से मेरे साथ रमण करती हो। ।।३१।।

आशे! त्वां सततं देहे वामभागगतां हि मे।
सदा षोडशवर्षीयां संस्मरामि स्मिताननाम्।।३२।।

हे आशे! मधुर मुस्कानवाली, सोलहवर्षीया, मेरे अंग के बाँए भाग में तुम स्थित हो, ऐसे स्वरूप का मैं ध्यान हमेशा करता हूँ। ।।३२।।

आशे! दिव्योपचारैस्त्वां पूजयामि मनोगतैः।
आहुतिं विषयादीनां ददामि ज्ञानपावकैः।।३३।।

हे आशे! मैं मनोभाव से दिव्यवस्तुओं से तुम्हारी पूजा करता हूँ, ज्ञानरूप अग्नि में विषयों की आहुति देता हूँ। ।।३३।।

द्रवीभूतरसो ह्याशे! गिरीशाख्यो न संशयः।
घनीभूतस्स एवात्र रमते तव सन्निधौ।।३४।।

हे आशे! यह बात निःसंदेह है कि–गिरीश (शंकर) भी तेरे प्रेम में पीघलकर पानी हो गया था, वही गिरीश (शंकर) के रूप में फिर घनीभूत होकर तेरे सान्निध्य में रमण करता है। ।।३४।।

आशे! त्वया विना नाहं त्वं तथैव मया विना।
सिद्धं स्वानुभवाद्ध्येतदन्यथा लुप्यते रसः।।३५।।

आशे! तुम्हारे बिना मेरा कोइ अस्तित्व नहीं है तथा मेरे बिना तुम्हारा अस्तित्व नहीं है; यह हम दोनों का अनुभव सिद्ध है, नहीं तो प्रेम का अनुभव लुप्त हो जाता है। ।।३५।।

आशे! विज्ञाय सम्यक् ते स्वरूपं हि रसात्मकम्।
स्वयमेव परानन्दे निमग्ना भव सत्वरम्।।३६।।

आशे! तुम्हारे रसात्मक (प्रेममय, मिलनसार) स्वरूप को अच्छी तरह जानकर मेरा कहना है कि स्वयं ही तु परमानन्द में लीन हो जा। ।।३६।।

परानन्दनिमग्ना त्वं हर्षाश्रुपुलकाङ्किता।
आशे! नित्यं हि मच्चित्ते संस्थिता नात्र विस्मयः।।३७।।

आशे! परमानन्द में लीन होने से हर्ष के आँसू निकल रहे हैं और शरीर भी रोमांचित हो गया है, तुम नित्य मेरे मन में रहती हो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। ।।३७।।

नरनारीविभेदो न सामरस्ये प्रकाशते।
आशे! तज्ज्ञानमात्रेण वासना शुद्ध्यति स्वयम्।।३८।।

आशे! समरसता आने पर नर-नारी में भी भेदज्ञान नहीं रहता, उसके ज्ञानमात्र से वासना (विचार, इच्छाएँ) अपने आप शुद्ध हो जाती हैं। ।।३८।।

सम्भोगे रससिद्धिस्तु विभावाद्यैः प्रजायते।
आशे! तापोदयस्तद्वद्विप्रलम्भे न संशयः।।३९।।

आशे! विभावादियों से संयोग होनेपर रस की सिद्धि होती हैं, उसी तरह विभावादियों से वियोग की दशा में कष्ट होता है। ।।३९।।

तस्मादालम्बनं प्राप्य सत्वरं ब्रह्मचिन्तने।
आशे! लीना मनोवृत्तिः कर्तव्या भावतस्त्वया।।४०।।

आशे! इसलिए ध्यान में आलम्बन पाकर तुम्हे भाव से मनोवृत्ति (मन की चंचलता) को शीघ्र ही लीन (शांत) करना चाहिये। ।।४०।।

उत्कृष्टं वचनातीतं स्वसंवेद्यमहैतुकम्।
आशे! ते विद्यते प्रेम स्वच्छदर्पणवन्मयि।।४१।।

आशे! तेरा मुझ पर प्रेम स्वच्छ दर्पण की तरह है, तेरा प्रेम उत्कृष्ट है, जो वचन से व्यक्त नहीं हो सकता, इसका अनुभव सिर्फ मुझे ही हो सकता है, तेरा प्रेम निष्कारण है। ।।४१।।

आशे! ते प्रेमपाशेन सर्वदाहं नियन्त्रितः।
त्वदधीनोऽस्मि ते दासस्त्वमेव स्वामिनी मम।।४२।।

आशे! तुम्हारे प्रेमबन्धन से बाँधा हुआ मैं तुम्हारे अधीन हूँ, मैं तुम्हारा दास हूँ और तुम मेरी स्वामिनी हो। ।।४२।।

प्रेमैक्यकारिणी देवी ब्रह्मसायुज्यदायिनी।
आशे! प्राणाधिका त्वं मे प्रेमपीयूषवर्षिणी।।४३।।

आशे! तुम साक्षात् ब्रह्म से मिलानेवाली (ब्रह्मसायुज्यवाली) प्रेम का ऐक्य करानेवाली हो, तुम मुझपर प्रेमामृत वर्षानेवाली हो, तुम मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हो। ।।४३।।

पुंस्त्रीप्रेमरसस्साक्षादावयो रमते हृदि।
अणुमात्रविभेदो न तस्मादाशे! मयि त्वयि।।४४।।

आशे! हम दोनों के हृदय में स्त्री-पुरुष की तरह परस्पर प्रेम रहता है, जिससे मुझमें-तुझमें अणुमात्र का भी अंतर नहीं है। ।।४४।।

आशे! साक्षादिव ध्याने तव रूपं तु भासते।
विरहेणातितीव्रेण तस्मात्तापः फलप्रदः।।४५।।

आशे! ध्यान में साक्षात् तुम्हारे रूप का आनन्ददायक भास होता है इसलिए विरह से संताप भी उतना ही कष्टकारक होता है। ।।४५।।

आशे! त्वामेव सर्वत्र साक्षात्पुरस्स्थितामिव।
विना ध्यानेन पश्यामि चक्षुर्भ्यां विरहे सदा।।४६।।

आशे! तुम्हारे विरह में भी मैं तुम्हें विना ध्यान के इन आँखों से सभी जगह तुम्हें मेरे सामने ही साक्षात् खडी हुई देखता हूँ। ।।४६।।

आशे! प्रेमवशस्त्वद्य रहस्यं कथयामि ते।
अभेद आवयोर्ज्ञेयश्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।४७।।

आशे! प्रेम के वशीभूत होकर आज तुम से एक जानने योग्य रहस्य कहता हूँ कि मुझमें-तुझमें चन्द्र और चन्द्रिका की तरह अभेद सम्बन्ध है। ।।४७।।

आशे! मे हृदयानन्दं संवर्द्ध्य रतिचेष्टितैः।
मां करोषि रसज्ञा त्वं सर्वथा प्रणयातुरम्।।४८।।

आशे! तुम रसज्ञा हो, अपने हावभाव से मेरे हृदय के आनन्द को बढाकर तुम मुझे हर तरह से प्रेमातुर करती हो। ।।४८।।

आशे! ज्ञाते स्वरूपे तु शिवशक्तियुते सदा।
रुचिरस्स्याद्वियोगोऽपि नवा वै स्थितिरावयोः।।४९।।

आशे! तेरे हमेशा शिवशक्ति से युक्त विख्यात (अर्धनारीश्वर) स्वरूप को जानने के बाद हम दोनों का वियोग भी सुन्दर होगा क्योंकि हम दोनों की स्थिति नयी होगी। ।।४९।।

आशे! तेऽद्भुतरूपस्य श्रुत्वैव वर्णनं शुभम्।
क्षणादेव परानन्दो जायते पुण्यशालिनाम्।।५०।।

आशे! तुम्हारे अद्भुत रूप का कल्याणकारी वर्णन सुनकर पुण्यशालियों को क्षण में ही परमानन्द की अनुभूति होती है। ।।५०।।

आशे! नानाविधा ते हि क्रीडा प्रेमसमन्विता।
ज्ञायते रम्यभावैर्हा किन्तु वक्तुं न शक्यते।।५१।।

आशे! प्रेम से युक्त तुम्हारी अनेक प्रकार की क्रीडा रम्यभाव से ही अनुभव की जाती हैं, उसे शब्दों से नहीं कहा जा सकता। ।।५१।।

हास्यकेलिविहारेषु प्रेमपूरितचेतसा।
आशे! क्रीडारसानन्दः प्राप्यतेऽत्र त्वया सह।।५२।।

आशे! चित्त में प्रेम भर के तुम्हारे साथ कहीं भी हास्य-केलि या विहार में क्रीडा करने से परमानन्द (रसानन्द) की प्राप्ति होती है। ।।५२।।

आशे! लीलारता त्वं हि नेत्रश्रोत्रमनोहरा।
शृङ्गाररसपूर्णा तु परब्रह्मप्रकाशिका।।५३।।

आशे! तुम लीला में रत होकर मेरे आँख, कान और मन को हरण करनेवाली हो, तुम शृङ्गाररस से पूर्ण तथा परब्रह्म को बतानेवाली (साक्षात्कार करानेवाली) हो। ।।५३।।

आशे! गुणेन रूपेण तवैवाहं विमोहितः।
सदा त्वामेव पश्यामि स्वप्ने समीपवर्तिनीम्।।५४।।

आशे! तुम्हारे रूप और गुण से मोहित होकर मैं हमेशा स्वप्न में भी तुमको ही समीप में बैठी देखता हूँ। ।।५४।।

आशे! त्वद्ध्यानलीनस्य चित्ते मे परमात्मनः।
उत्पद्यते स्वयं रूपं प्रकृष्टप्रणयान्वितम्।।५५।।

हे आशे! तुम्हारे ध्यान में मग्न होने पर मेरे मन में उत्कृष्ट प्रेम से भरे हुए परमात्मा का रूप (छाया) स्वयं ही उत्पन्न होता है। ।।५५।।

आशे! ते प्रेम सम्प्राप्य गिरीशेन निरन्तरम्।
क्रियते वै स्तुतिर्दिव्या तवाराधनलक्षणा।।५६।।

हे आशे! तुम्हारे प्रेम को पाकर भगवान शंकर तुम्हारे रूप-सौन्दर्य आदि लक्षणों से युक्त स्तुतिद्वारा तुम्हारी आराधना करते हैं। ।।५६।।

संसारमोहनाशाय तव प्रेमपरायणः।
आशेऽहं सर्वभावेन ध्यायामि त्वां प्रतिक्षणम्।।५७।।

हे आशे! मैं तुम्हारे प्रेम में लीन हूँ, सांसारिक मोह के नाश के लिए समर्पण भाव से सतत मैं तुम्हारा ध्यान करता हूँ। ।।५७।।

हसन्ती हासयन्त्येव वचनैर्मधुरैस्सदा।
आशे! मां नयसि शीघ्रं चिन्तादिरहितं पदम्।।५८।।

हे आशे! तुम सदा हँसती रहती हो तथा अपने मधुर वचन से दूसरों को

हँसाती हो, मुझे शीघ्र ही चिंता शोक वगैरे से रहित स्थान पर ले जाती हो (अर्थात् तुम्हारे ध्यान में मैं शीघ्र ही विषयविमुख होता हूँ)। ।।५८।।

विस्मृतिरेव देहस्य विरक्तिर्विषयादिषु।
आशे! योगपराकाष्ठा वियोगे तेऽनुभूयते।।५९।।

हे आशे! तेरे वियोग में योग की पराकाष्ठा का अनुभव होता है, देह का विस्मरण हो जाता है, विषय कषाय में विरक्ति हो जाती है। ।।५९।।

योगिभिरीड्यपादाब्जा परमार्थप्रकाशिका।
गिरीशस्य शरीरार्द्धे त्वमेवाशे! विराजसे।।६०।।

हे आशे! तेरे चरणकमल योगियों के द्वारा पूजने योग्य है, तुम परम तत्त्व को प्रकाशित करनेवाली हो, भगवान् शंकर के आधे अंग को सुशोभित करनेवाली हो। ।।६०।।

विदित्वा ब्रह्मविज्ञानं प्रमोदभरनिर्भरम्।
आशे! लग्नं प्रसादात्ते मनो मे तत्त्वचिन्तने।।६१।।

हे आशे! ब्रह्मज्ञान होनेपर आनन्द से भरा हुआ मेरा मन तुम्हारी कृपा से तत्त्वचिंतन में लगा रहता है। ।।६१।।

आशे! प्रबोधमापन्नो बद्धाञ्जलिपुटस्सदा।
त्वां ध्यायामि रहस्स्थित्वा त्रिलोकीदेवतां पराम्।।६२।।

हे आशे! ज्ञानप्राप्ति के बाद मैं एकांत में हमेशा हाथ जोडकर सर्वोत्कृष्ट तीनों लोकों की देवता स्वरूप तुम्हारा ध्यान करता हूँ। ।।६२।।

आशे! निधाय चित्ते त्वां त्वयि चित्तं निधाय मे।
ऐकात्म्यं परमं प्राप्य लये तिष्ठामि सर्वदा।।६३।।

हे आशे! तुम्हे मेरे चित्त में तथा मेरे मन को तुम्हारे चित्त में स्थापित करके तथा उससे एकात्मता (अभेदता) को प्राप्त करके उसमें लीन हो जाता हूँ (अर्थात् ध्यान गहरा होनेपर आत्मतत्त्व में खो जाता हूँ)। ।।६३।।

आशे! प्राणप्रिये! देवि! प्रणम्य त्वां मुदान्वितः।
बहिस्सन्धानशून्योऽहमन्तस्सौख्यं भजे सदा।।६४।।

आशे! भगवति देवि ! मैं प्रसन्न होकर तुम्हें प्रणाम करके बाहर के सुख दुःख से अज्ञानी होकर अंतःसुख में लीन हो जाता हूँ। ।।६४।।

आशे! त्वद्ध्यानचिह्नानि कम्पस्स्वेदोदयस्तथा।
रोमाञ्चः कण्ठरोधश्च हर्षाश्रु देहविस्मृतिः।।६५।।

हे आशे! कम्पन, पसीना आना, रोमांच, कंठ का अवरुद्ध होना, हर्ष से आँसू निकलना तथा अपने शरीर तक का ज्ञान नहीं रहना ये सब तुम्हारे ध्यान के चिह्न हैं। ।।६५।।

भजामि श्रद्धया नित्यं सुप्रसिद्धां महेश्वरीम्।
आशे! त्वां सुन्दरास्यां वै प्रसन्नां परदेवताम्।।६६।।

हे आशे! तुम देवियों में प्रसिद्ध परादेवी हो, मैं सदा श्रद्धापूर्वक तुम्हारे सुन्दर मुस्कराते हुये मुख का ध्यान करता हूँ। ।।६६।।

सकलागमरूपां वै चिदानन्दप्रदायिनीम्।
प्रेमासक्तस्सदैवाशे! त्वां याचेऽहं शिवाप्तये।।६७।।

हे आशे! तुम सकल आगम रूपा, ज्ञानरूप आनन्द को देनेवाली हो, मैं तुम्हारे प्रेम में सदा आसक्त रहता हूँ तथा तुम से मोक्षप्राप्ति की याचना करता हूँ। ।।६७।।

आशे! ते पादयुग्मं तु सर्वांस्त्रातुमलं भयात्।
संसारे तापतप्तानां शरणं परमाद्भुतम्।।६८।।

हे आशे! संसार में त्रिविध दुःखों से तप्तों की तुम अद्भुत शरण हो, सभी प्रकार के भय से रक्षा के लिये तुम्हारे चरण की सेवा पर्याप्त है। ।।६८।।

आशे! त्वां हि नमस्कृत्य सर्वसौभाग्यदायिनीम्।
क्षणादेव चिदानन्दे लीनं मे जायते मनः।।६९।।

हे ! सभी तरह के सौभाग्य देनेवाली आशा ! तुम को तुमको नमस्कार करने पर मेरा मन क्षणभर में ही चिदानन्द में मग्न हो जाता है। ।।६९।।

आशे! त्वं शक्तिरूपाऽसि काम्यसिद्धिप्रदायिनी।
संयुक्ता हि गिरीशेन मुक्तिसौख्यविधायिनी।।७०।।

हे आशे! तुम सभी की कामना पूर्ण करनेवाली शक्तिस्वरूपा हो, मुक्तिरूप सुख देनेवाली हो, भगवान् शंकर से युक्त हो। ।।७०।।

आशे! त्वमेव सर्वेषां काव्यानां प्रकृतिः परा।
कवीन्द्रा ये भजन्ते त्वां रससिद्धा भवन्ति ते।।७१।।

हे आशे! तुम ही सभी काव्यों का मूल स्फुरण केन्द्र हो, जो कवि तुम्हारा ध्यान करते हैं वे निश्चित ही भावुक होते हैं। ।।७१।।

आशे! तवैव संसर्गादहं सौख्यमुपागतः।
कलिना कालरूपेण बाधितो न कदाचन।।७२।।

हे आशे! तुम्हारे ही संसर्ग से मैंने सुख प्राप्त किया और कलिरूप काल भी मुझे नहीं रोक सका। ।।७२।।

आशे! त्वां हृदि संस्थाप्य ज्ञानमार्गे प्रवर्तनात्।
जायते मनसस्स्थैर्यं चिदानन्दोऽपि सत्वरम्।।७३।।

हे आशे! तुम्हे हृदय में स्थापित करके ज्ञानमार्ग में प्रवृत्त होने पर चित्त स्थिर हो जाता है तथा चिदानन्द भी शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। ।।७३।।

संसारप्रीतिभङ्गाय सामरस्यविधायकम्।
आशे! प्रतिक्षणं कुर्वे कीर्तनं तव मुक्तिदम्।।७४।।

हे आशे! संसार के मोहभंग के लिए तथा समता के लिये मैं तुम्हारे मुक्तिदायक नाम का कीर्तन अहर्निश करता हूँ। ।।७४।।

सामरस्यात्सदैवाशे! जीवन्मुक्तो हि साधकः।
वर्तते देहमध्येऽपि घृतकुम्भे यथा जलम्।।७५।।

आशे! समभाव से साधक जीवन्मुक्त हो जाता है, शरीर में भी आत्मा निर्लिप्तभाव से रहता है जैसे घी के घडे में जल होता है। ।।७५।।

दूरे स्थिताऽपि नूनं त्वं रसशास्त्रविशारदा।
आशे! स्मरणमात्रेण परमानन्ददायिनी।।७६।।

आशा तुम वास्तव में रसशास्त्र में निपुण हो, दूर रहकर भी ध्यानमात्र से परमानन्द को देनेवाली हो। ।।७६।।

आशे! सञ्जीवनी लोके महाजाड्यापहारिणी।
पञ्चाशद्वर्णरूपा त्वं सर्वसारस्वतप्रदा।।७७।।

हे आशे! तुम महाअज्ञानता का हरण करनेवाली, सभी विद्याओं को देनेवाली पचास वर्णों से युक्त इस लोक में संजीवनी हो। ।।७७।।

सामरस्यसुखं दिव्यं सर्वोत्कृष्टं हि तत्त्वतः।
आशे! बहिर्मुखैस्तत्तु प्राप्यते न कदाचन।।७८।।

हे आशे! सभी तत्त्वों में अद्भुत एवं सर्वोत्कृष्ट समरसता है, जिसे बहिर्मुखी प्रवृत्तिवाले कभी समता को नहीं प्राप्त कर सकते। ।।७८।।

आशे! क्षणाच्चिदुल्लासस्सामरस्याद्धि जायते।
तस्माच्छिवार्चनं मन्येऽहं सदेहे न दुष्यते।।७९।।

हे आशे! क्षणभर के मन की प्रसन्नता से समरसता होती है तथा उससे शिव की अर्चना (मोक्षमार्ग प्रशस्त) होती है, मेरा मन मानता है कि ऐसी आत्मा सशरीरी होने में भी कोई दोष नहीं है। ।।७९।।

निर्गुणा शक्तिरूपा त्वं नामरूपविवर्जिता।
आशे! लोकोपकाराय विलासस्सगुणोऽपि ते।।८०।।

हे आशे! वस्तुतः तुम रूप, नाम वगैरे से हीन निर्गुण शक्तिरूपा हो, लेकिन लोक-उपकार के लिए सगुण और चेष्टावाली होती हो। ।।८०।।

आराधनं तवैवाशे! सामरस्यसुखास्पदम्।
चिदानन्दप्रदं मन्ये ब्रह्मविद्याप्रकाशकम्।।८१।।

हे आशे! मेरा मानना है कि तुम्हारी ही आराधना समरसता का स्थान है, चिदानन्द देनेवाली है एवं ब्रह्मविद्या की प्रकाशक है। ।।८१।।

संसारे दुःखपूर्णेऽस्मिन् सिद्धिमिच्छेद्य आत्मनः।
आशे! प्रमादमुत्सृज्य सामरस्यं समभ्यसेत्।।८२।।

हे आशे! इस दुःखमय संसार में आत्मा की सिद्धि चाहनेवालों को प्रमाद छोडकर समरसता का अभ्यास करना चाहिए। ।।८२।।

आशे! तवैव सान्निध्यं पुण्यक्षेत्रं न संशयः।
तथा ते प्रीतिसामर्थ्यं ज्ञानसौभाग्यसिद्धिदम्।।८३।।

हे आशे! निस्सन्देह तुम्हारा सानिध्य ही तीर्थक्षेत्र है तथा तुम्हारा प्रेम सामर्थ्य, ज्ञान और सौभाग्य देनेवाले है। ।।८३।।

आशे! ते सन्निधानेन मम चित्तं प्रसीदति।
लभते पूर्णवैराग्यं सत्वरं ज्ञानगर्भितम्।।८४।।

हे आशे! तुम्हारे सान्निध्य से मेरे मन में प्रसन्नता होती है और शीघ्र ही ज्ञान से भरा हुआ वैराग्य (संसार की नश्वरता का बोध) मिल जाता है। ।।८४।।

आशे! ते शिवसंयोगादुत्पन्नामृतधारया।
प्लावयामि ममात्मानं सदैवानन्दनिर्भरः।।८५।।

हे आशे! तुम्हारे और शिव के संयोग से उत्पन्न अमृतधारा से आनन्द विभोर होकर मैं आत्मा को नहलाता हूँ। ।।८५।।

आशे! विलोक्यते नूनं शृङ्गारे तव चातुरी।
सामरस्ये यया जाते साम्यमेव प्रसर्पति।।८६।।

हे आशे! शृंगार (प्रसन्नता) में तुम्हारी चतुरता दिखती है जिससे एकबार समरसता हो जानेपर समता ही गति करती है। ।।८६।।

आशे! त्वं सात्त्विकी तस्माज्ज्ञानगोष्ठीरता ध्रुवम्।
भोगेच्छारहिता लीना गिरीशस्मरणे सदा।।८७।।

हे आशे! तुम सात्त्विकी हो इसलिए ज्ञान गोष्ठी में सदा रत रहती हो; भोग की इच्छा तुम्हे नहीं है तुम सदा भगवान् शंकर के ध्यान में लीन रहती हो। ।।८७।।

दर्शने स्पर्शने चैव संलापे स्मरणे तथा।
आशे! तवैव संयोगे गिरीशस्य महासुखम्।।८८।।

हे आशे! दर्शन-स्पर्श-बातचीत या स्मरण में किसी भी तरह से तुम्हारा ही संयोग भगवान् शंकर का सुख है। ।।८८।।

आशे! नित्यं गिरीशस्य सुखं वाञ्छसि भावतः।
तस्मात्त्वमेव तस्यासि मनोविश्रामभूमिका।।८९।।

आशे! तुम भाव से हरसमय भगवान् शंकर का सुख चाहती हो इसलिये तुम ही उनके मन का उपयुक्त विश्रामस्थल हो। ।।८९।।

आशे! पूर्वानुरागाद्धि मदनावेशसम्भ्रमात्।
गिरीशं प्रति गच्छन्ती त्वमेवैकाऽभिसारिका।।९०।।

हे आशे! पूर्व प्रेम से ही तुम अकेली अभिसारिका (पति निर्दिष्ट स्थान पर जानेवाली) हो जो वसंतऋतु में आदर से भगवान् शंकर के पास जा रही हो। ।।९०।।

रूपसौभाग्यसम्पन्ना भ्रूविलासमनोहरा।
प्रीतियुक्ता गिरीशेन त्वमेवाशे निषेविता।।९१।।

हे आशे! तुम अत्यंत रूपवती, सौभाग्यशालिनी तथा सुन्दर भौंहे वाली हो जो अकारण ही प्रेम को उत्पन्न करती है; अत एव भगवान् शंकर के द्वारा आलिंगित हो। ।।९१।।

शक्तिश्शिवश्शिवश्शक्तिः रहस्यं ननु तान्त्रिकम्।
आशे! तद्रसिकैर्मन्ये सामरस्ये विभाव्यते।।९२।।

हे आशे! शक्ति शिव है या शिव शक्ति है यह तो तंत्रशास्त्र का विषय है किंतु रसिक (योगी) तो इसे समरसता ही मानते हैं। ।।९२।।

आशे! तवैव संसारे नानामतावलम्बिभिः।
ध्यानमार्गैरसङ्ख्यैश्च साधना क्रियते सदा।।९३।।

हे आशे! संसार में अनेक मत को माननेवाले असंख्य ध्यानमार्ग से तुम्हारी ही साधना करते हैं। ।।९३।।

त्वयि दृष्टे भवत्येव प्रसन्नं मे मनस्सदा।
तेनाशे! प्रेमसम्बन्ध आवयोस्तु पुरातनः।।९४।।

हे आशे! तुम्हारा ध्यान करने से निश्चित ही मेरा मन प्रसन्न होता है, इससे ऐसा लगता है कि हम दोनों का प्रेम सम्बन्ध पुराना है। ।।९४।।

शिवशक्त्यात्मकं विश्वमाशे! तन्त्रे निरूपितम्।
एतज्ज्ञानं यदा पक्वं तदा मुक्तिर्भवेद् ध्रुवम्।।९५।।

हे आशे! तंत्रशास्त्र में संसार को शिव-शक्ति का संयुक्त रूप कहा गया है तथा इस बात का ज्ञान दृढ होने पर मुक्ति निश्चित है। ।।९५।।

अद्वैतं शिवशक्त्योर्हि योगमाहुर्विचक्षणाः।
आशे! तेन परानन्दस्सम्यगेवानुभूयते।।९६।।

हे आशे! शिव और शक्ति के अद्वैतभाव (दोनों मिलकर एक) को विद्वानों ने योग कहा है जिससे (योग से) निश्चित ही परमानन्द की अनुभूति होती है। ।।९६।।

आशे! तवैव रूपं ये जानन्ति परमामृतम्।
ते प्राप्नुवन्ति मोक्षं वै शक्तितत्त्वविशारदाः।।९७।।

हे आशे! शक्ति तत्त्व को जाननेवाले जो तुम्हारे ही अमृतमय रूप को जानते हैं, वे अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। ।।९७।।

आशे! गुरोर्मुखाज्ज्ञातं स्त्रीरूपं खलु तात्त्विकम्।
शुद्धशक्तिस्वरूपं ते भुक्तिमुक्तिप्रसाधकम्।।९८।।

आशे! गुरुजी के मुख से मुझे तुम्हारे तात्त्विक स्त्रीरूप का ज्ञान हुआ, तुम भुक्ति और मुक्ति देनेवाली शुद्धशक्ति स्वरूपा हो। ।।९८।।

स्त्रीसाध्यं निखिलं लोके सैव मुक्तिस्वरूपिणी।
स्त्रीतत्त्वज्ञाः परं सौख्यं तस्मादाशे! प्रयान्ति वै।।९९।।

आशे! इस लोक में स्त्री सभी को वश में करती है, वही मुक्तिस्वरूपा है इसलिये स्त्रीतत्त्व को जाननेवाले परं सुख मोक्ष के लिये प्रयत्न (स्त्रीरूप की उपासना) करते हैं। ।।९९।।

प्रत्यक्षं देवरूपं हि मत्वा त्वं गिरीशं मुदा।
आशे! शुश्रूषसे सम्यक् सर्वदा भक्तिभावतः।।१००।।

आशे! तुम भगवान् शंकर को प्रत्यक्ष देवरूप मानकर प्रसन्नता से भक्तिभावपूर्वक अहर्निश उनकी सेवा करती हो। ।।१००।।

त्वं हि प्रेमप्रकर्षान्मे मनोवृत्तानुसारिणी।
आशे! तस्मात्त्वया सार्धं सामरस्यसुखं मम।।१०१।।

आशे! प्रेम की उत्कृष्टता से तुम मेरे मन का अनुसरण करनेवाली हो, इसलिये तुम्हारे साथ मुझे समरसता सुख का अनुभव होता है। ।।१०१।।

आशे! तव प्रसादाद्धि योगदृष्टियुतो नरः।
अन्तस्सर्वपरित्यागी वीतरागी भवेद्ध्रुवम्।।१०२।।

आशे! तुम्हारी कृपा से ही लोग योगदृष्टिवाले होते हैं, अंतरात्मा से सभी वस्तुओं का त्याग करके अवश्य वीतरागी होते हैं। ।।१०२।।

आशे! त्वमेव सर्वज्ञा भवपाशनिकृन्तनी।
त्वयि तस्मात्परा प्रीतिस्सदा मेऽस्तु भवे भवे।।१०३।।

आशे! तु ही सर्वज्ञा हो, तु ही भवबन्धन को काटनेवाली हो, अतः तुम्हारे ऊपर के प्रत्येक भव में मेरी प्रीति हो। ।।१०३।।

आशे! त्वां मुदितस्साक्षात्परब्रह्मस्वरूपिणीम्।
चिद्विलासरतां वन्दे भावातीतां निरन्तरम्।।१०४।।

आशे! तुम साक्षात् प्रसन्न परब्रह्म स्वरूपा, लम्बे समय तक सात्त्विक भाव में लीन रहनेवाली, भावों से परे हो; तुम को सतत मै वन्दना करता हूँ। ।।१०४।।

विज्ञातात्मस्वरूपस्य सामरस्याधिकारिणः।
आशे! त्वं प्रीतिसंयुक्ता प्रिया ज्येष्ठा हि तात्त्विकी।।१०५।।

आशे! तुम आत्मस्वरूप और समरसता के अधिकारी की तुम प्रीति से ओतप्रोत तत्त्व को जाननेवाली ज्येष्ठ प्रिया हो। ।।१०५।।

रासक्रीडाप्रसङ्गे वा सर्वावस्थासु सर्वदा।
आशे! महाव्रतं मन्ये प्रियानुकरणं हि ते।।१०६।।

आशे! रासक्रीडा के समय या सभी अवस्थाओं में तुम्हें प्रिया का अनुकरण करना महाव्रत मानता हूँ। ।।१०६।।

आशे! त्वां हि समाधाय यश्चित्ते ध्यानतत्परः।
लोकाचारैस्तु किं तस्य बहिष्क्रियादिभिस्तदा।।१०७।।

जो तुमको मन में रखकर ध्यान में लीन होता है, अर्थात् तुम्हारा ही ध्यान करता है, आशे! उसे बाहरी लोकाचारक्रिया धर्म अनुष्ठानादि का क्या प्रयोजन? ।।१०७।।

आशे! त्वमेव संसारे रागादिविषनाशिनी।
समतामृतरूपा वै परमामृतदायिनी।।१०८।।

आशे! इस संसार में रागादिरूप विष को नाश करनेवाली समतारूप अमृत स्वरूपवाली, परम अमृत (मोक्ष) देनेवाली तुम ही हो। ।।१०८।।

षट्चक्रमध्यमार्गेण क्षणादेवोर्ध्वगामिनी।
परा शक्तिस्त्वमेवाशे! योगिप्रानप्रिया मता।।१०९।।

आशे! षट्चक्र के मध्यमार्ग से क्षणभर में ऊपर जानेवाली, तथा योगियों को प्राण के समान प्रिया पराशक्ति तुम ही हो। ।।१०९।।

आशे! स्वानुभवस्सद्यसामरस्यात्प्रकाशते।
जायते शिवभावश्च सर्वत्र समदर्शिता।।११०।।

आशे! (तुम्हारे ही ध्यान से) तुरंत ही समरसता आती है तथा समरसता से साधक का अपना अनुभव प्रकाशित होता है; एवं मैं शिव हूँ इस भाव से साधकों में समदर्शिता होती है। ।।११०।।

गुरोर्भद्रङ्कराख्यस्य पन्न्यासपदधारिणः।
प्रसादात्प्रेमवृद्ध्यर्थमाशाप्रेमस्तुतिः कृता।।१११।।

गुरुवर पंन्यास श्री भद्रशंकरविजयजी की कृपा से प्रेमवृद्धिहेतु आशाप्रेमस्तुति की रचना की गयी। ।।१११।।

।।इति आशाप्रेमस्तुतिः।।

परिशिष्ट–१

आत्मतत्त्वसमीक्षणम् गुजराती अनुवाद

पू. मुनिश्री वैराग्यरतिविजयजी गणि

શ્રી વીર પ્રભુને,ગુરુને, માતાને અને પિતાને ભક્તિપૂર્વક નમસ્કાર કરીને સહુના હિત માટે આત્મતત્વસમીક્ષણ કરું છું.(૧)

સાધક આત્મજ્ઞાનથી જ્ઞાનગર્ભિત વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરે છે. જ્ઞાનગર્ભિત વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત થતાં વિષયોનો ત્યાગ કરીને મુક્તિની ઇચ્છા કરે છે.(૨)

ત્યાર બાદ ક્ષમાદિ દસ પ્રકારનો ધર્મ ભાવથી સ્વીકારીને શરીરને જૂદું કરીને સદા જ્ઞાનરૂપ(આત્મા)માં રહે છે.(૩)

ચૈતન્ય(આત્મસ્વરૂપ)ભાવનાવાળો તે બુદ્ધિમાન્ પુરુષ આત્માને(પોતાને) જ્ઞાનમાં સ્થાપી રાખે છે તેથી જીવન્મુક્ત જેવો જણાય છે (૪)

(તે) સંગથી પર બને છે,સીમાઓ(આકાર - પૌદ્ગલિક પર્યાય)થી પર બને છે, બંધનોથી મુક્ત બને છે.સદા પવિત્ર હોય છે. તે કર્તા નથી, ભોક્તા નથી,સર્વ દ્વન્દ્વોથી રહિત હોય છે.(૫)

પોતાના આત્માનો બોધ થવાથી તે આખા વિશ્વને સ્વપ્નની જેમ જૂએ છે.શ્રેષ્ઠ આનંદમાં નિમગ્ન બનેલો તે પૂર્ણ બને છે.(૬)

વિવેક(જ્ઞાન)ના સહારે પોતાના શુદ્ધ-બુદ્ધસ્વરૂપને જાણી દેહાભિમાન દૂર કરી ચિત્તની ક્ષુદ્રતાનો ત્યાગ કરે છે.(૭)

આમ હું મુક્ત છું એવું જ્ઞાન થતાં તે દરેક વિષયમાં નિષ્ક્રિય બની જાય છે અને સર્વ ભ્રમોથી મુક્ત બની શરીરમાં (શરીરથી) અળગો બનીને રહે છે.(૮)

તેનું મન નિર્મળ અને વિકલ્પ વિનાનું હોય છે. તે જ્ઞાનાનંદમાં મસ્ત રહે છે. તમામ પૌદ્ગલિક પર્યાયોથી પર બની નિરાકાર એવા આત્મામાં રહે છે.(૯)

મોહની વિડંબના અને મમત્વથી મુક્ત બનેલો તે પોતાના આત્મામાં જ પરમાત્માનું સ્વરૂપ જૂએ છે.(૧૦)

ત્યાર પછી તે જ્ઞાનયોગના સહારે પોતાના આત્માના આલંબનના યોગે

ઝડપથી શુદ્ધ આત્મદશામાં વિશ્રાંતિ પામે છે.(૧૧)

આ રીતે અદ્વૈતની ભાવના કરતા બધે જ સમભાવ જન્મે છે, તેને કારણે મુનિઓમાં શ્રેષ્ઠ એવો તે સંસારની અને મોક્ષની આકાંક્ષાથી પર બને છે.(૧૨)

તેનું દ્વૈતને કારણે જન્મેલું દુઃખ નાશ પામે છે. તે જ્ઞાનના અમૃતરસમાં ડૂબી જાય છે.(૧૩)

આત્મા શાશ્વત છે અને જગતનું સ્વરૂપ વિનાશી છે એમ જાણી તે વિવેકી તરત જ અર્થ અને કામથી વિમુખ થાય છે.(૧૪)

શુદ્ધ ચૈતન્યની પ્રાપ્તિ થતા મમતા દૂર થાય છે. તેથી નિત્ય-અનિત્યના વિવેકીને પૂર્ણ વિરક્તિ જન્મે છે.(૧૫)

શરીર જડ છે એમ જાણીને જે પુદ્ગલમાં મોહ પામતો નથી તે જ્ઞાનતૃપ્ત પુરુષને મૃત્યુ ઉપસ્થિત થતા ડર શેનો?(૧૬)

તેને ગામમાં કે વનમાં કોઈ ભેદ હોતો નથી. તે દરેક સ્થળે હંમેશા સમાન વૃત્તિ ધરાવે છે, આ વાતમાં કોઈ શંકા નથી.(૧૭)

તે મોક્ષાર્થી ધીર પુરુષ સમતાનું આલંબન લઈ નિંદા અને સ્તુતિમાં સમભાવ રાખે છે અને ક્યારેય રોષ કે તોષ કરતો નથી.(૧૮)

આ ચરાચર વિશ્વમાં જેને હેય કે ઉપાદેય જેવું કશું નથી , ઇષ્ટ કે અનિષ્ટ જેવો વિકલ્પ નથી તે કર્મથી શું લેપાશે?(૧૯)

સારા સ્થાનમાં રહલો યોગી હર્ષ કરતો નથી. તે જ રીતે સર્વનાશ થઈ જાય તો પણ (યોગીને) શોક થતો નથી.(૨૦)

બધા જ સંયોગોનો ત્યાગ થઈ જવાથી સાધક અસંગ બની જાય છે અને સમત્વયોગની સિદ્ધિ થતા દરેક સ્થળે સમ(સમાન બુદ્ધિવાળો) બને છે.(૨૧)

કોઈક જ આ વાત તાત્વિક રીતે જાણે છે કે જે પરાત્મા છે તે હું જ છું. સોહંભાવ પ્રગટ થતા ક્યાંય પણ ભય રહેતો નથી.(૨૨)

પ્રવૃત્તિમાં સમતા તો પરિણામના ભેદથી (જોવા મળે) છે. જ્યાં અજ્ઞાની (કર્મથી) લેપાય છે ત્યાં જ્ઞાની લેપાતો નથીમ(૨૩)

જેમ આકાશ ધૂમાડાથી ક્યારેય લેપાતું નથી, કમળનું પાંદડું પાણીથી ક્યારેય

લેપાતું નથી તેમ આત્મસ્થ વ્યક્તિ પુણ્ય-પાપથી ક્યારેય લેપાતો નથી.(૨૪)

(જે વ્યક્તિ) અનેકાંતમાં નિષ્ણાત છે, દ્વૈત-અદ્વૈતનો (વિવેક કરવામાં) વિશારદ છે તે પોતાના સ્વરૂપમાં લય પામે છે.આ વાતમાં કોઈ શંકા નથી.(૨૫)

વીતરાગ હંમેશા મુક્ત હોય છે, કર્મબંધ તો રાગીને થાય છે.માટે હું(શરીર) નથી અને કોઈ મારૂં નથી આ મોક્ષનો મંત્ર કહેવાયો છે.(૨૬)

જ્ઞાનગર્ભિત વૈરાગ્યને કારણે પ્રાપ્ત થતો પરમ ઉપશમ અને સર્વ કર્મોનો ક્ષય વાસ્તવિક રીતે ભવ્યને જ મળે છે.(૨૭)

વાસના જ સંસાર છે. તેના ત્યાગથી મુક્તિ થાય છે તેમ મનાય છે. તેથી તમામ પ્રયત્ન કરીને વાસનારહિત થા.(૨૮)

વાસનાનો ત્યાગ કરવાની સાથે જ (આત્મા) પોતાની અવસ્થા પોતાની મેળે જ પ્રાપ્ત કરી લે છે. આ અવસ્થામાં આત્મા પોતે જ પોતાનો ગુરુ બની જાય છે.(૨૯)

જે વ્યક્તિ આખા જગતને ઇંદ્રજાલની જેવું અનિત્ય જૂએ છે તે જ્ઞાનગર્ભિત વૈરાગ્યને આધારે અપાર સુખ પામે છે.(૩૦)

જે બુદ્ધિમાન વ્યક્તિ અર્થ અને કામને છોડી હંમેશા ધર્મ અને મોક્ષમાં રુચિ રાખે છે તેનો મોક્ષ નિશ્ચિત છે.(૩૧)

આ લોકમાં અનાસક્ત વ્યક્તિ સુખી છે અને આસક્ત વ્યક્તિ હંમેશા દુઃખી છે.તેથી તે પ્રૌઢ વિરાગી વ્યક્તિને જ નિત્ય સુખ મનાય છે.(૩૨)

જે વ્યક્તિને- હું શરીર નથી, શરીર મારું નથી આ પ્રકારનો નિશ્ચય થઇ ગયો છે તેનો જ બંધ તૂટે છે તેવું તત્વના જાણકારોનું કહેવું છે.(૩૩)

તે યોગીઓમાં શ્રેષ્ઠ પુરુષ હંમેશા આત્મામાં લીન હોય છે,તેને શરીર ઉપર પણ પ્રેમ હોતો નથી,તે નિર્વિકલ્પ અને નિરંજન બની શોભે છે.(૩૪)

જ્યારે બધી જ ચિંતાનો ત્યાગ કરી મન અંતર્મુખ થઈ જાય અને વિષયો પર પ્રેમ ન રહે ત્યારે તત્વનો પ્રકાશ પ્રાપ્ત થાય છે.(૩૫)

મનની સ્વસ્થતા સાચા અર્થમાં સાધુતામાં(સચ્ચાઈ) છે.આ અવસ્થામાં સાધક ઔદયિક ભાવમાં વર્તે છે.(અર્થ સ્પષ્ટ થતો નથી)(૩૬)

દેહસ્થ યોગી(જેઓ શરીર માટે યોગનો આશરો લે છે) દ્રવ્યથી યોગી મનાયા છે.જેઓ દેહાતીત છે તેઓ જ ભાવથી(સાચા) યોગી છે(૩૭)

(મનની) ચિંતા અને (શરીરની) ચેષ્ટાનો ત્યાગ કરવાથી અનાયાસે પોતાના સ્વરૂપમાં લય થાય છે.તેનાથી શુભ અશુભ કર્મોનો ક્ષય થાય છે.(૩૮)

જેને આ સંસારમાં ઇંદ્રિયોના શુભ અશુભ વિષયો પર વૈરાગ્ય જન્મે છે તેનું મન આત્મામાં તરત જ લીન બની જાય છે.(૩૯)

રાગ દ્વેષ વિગેરે દોષો મનના ધર્મો કહ્યા છે. મનનો નાશ થતા નિશ્ચિતપણે તેમનો નાશ થઇ જાય છે(૪૦)

મમત્વ બંધનું કારણ છે એમ જાણીને યોગી સર્વ ભાવોમાં મમતારહિત અને વિકલ્પ વિનાનો બની જાય છે.(૪૧)

આ આત્મા જ્ઞાન સ્વરૂપ છે. તેના બંધ અને મોક્ષ નથી. તે નિરપેક્ષ છે,સદા સાક્ષી છે, સ્વભાવથી નિર્વિકાર છે.(૪૨)

ક્રમે કરીને અભ્યાસ દ્વારા આત્મનિષ્ઠ યોગીનું બાહ્ય ભાવ વિષેનું સ્મરણ ઓછું થતું જાય છે. તેનું મન શૂન્ય બને છે.(૪૩)

જેના મનમાં હર્ષ કે શોક નથી,જે દરેક સ્થળે સમાન વૃત્તિ ધરાવે છે તે (યોગી) શુદ્ધ ચેતનાની સમાધિમય અવસ્થામાં ધ્યેય(આત્મા) સ્વરૂપ જણાય છે.(૪૪)

જ્યારે કોઇ વ્યક્તિ પોતાના શરીરથી પોતાના આત્માને જૂદો જૂએ ત્યારે સાચી રીતે યોગ(ધ્યાન)નો વિધિ જન્મે છે.(૪૫)

મન જ્યારેસર્વ દ્વન્દ્વોથી વિમુક્ત થઈ નિર્વિચાર બને છે ત્યારે સ્પૃહાનો નાશ થવાથી અનાયાસે મુક્તિ થાય છે.(૪૬)

બધા જ બાહ્ય ભાવોનું વિસ્મરણ થવાથી સંસાર વૃક્ષનું મૂળ નાશ પામે છે.તે સાથે જ યોગી ભવવનથી મુક્ત બને છે,તેનો સંસારમાં જન્મ થતો નથી.(૪૭)

જે ફળની ઇચ્છા રાખ્યા વિના કર્મ કરે છે તેની બધી જ વૃત્તિ શાંત થઈ જાય છે.તેથી તેનું મન વિકલ્પ રહિત બને છે અને પોતાની મેળે જ આત્મામાં લીન બની જાય છે.(૪૮)

યોગના જાણકાર મનનો નાશ કરી પોતાના આત્મામાં સ્થિર થાય છે. જેમ ઘી ભરેલા ઘડામાં પાણી ઘીથી અળગું રહે છે તેમ આવો યોગી શરીરમાં રહેવા છતાં શરીરથી વેગળો રહે છે.(૪૯)

વિવેકને કારણે બધા જ વિષયોમાં ઉદાસીનતા જન્મે છે. ઉદાસીનતા પ્રાપ્ત થતાં નિઃસ્પૃહ એવા યોગીને મુક્તિની ચિંતા(ઇચ્છા) પણ રહેતી નથી.(૫૦)

શાસ્ત્રોમાં યોગીઓને સ્વચ્છંદ(ઇચ્છાના બંધનથી મુક્ત)કહેવામાં આવ્યા છે તે કેટલાક વિરલ યોગી જ જાણે છે.(૫૧)

તમામ પ્રકારના સંકલ્પથી મુક્ત, આત્માના આનંદમાં જ રમમાણ યોગી સમાધિમાં પ્રવેશ કરે ત્યારે જિન(અરિહંત) જેવો બને છે(૫૨)

તત્વના નિશ્ચયથી જન્મેલી મનઃશાંતિથી જ સમાધિ જન્મે છે.તેથી પૂરી શક્તિથી તત્વનો નિશ્ચય કરવા મહેનત કરવી જોઈએ.(૫૩)

પંન્યાસપદને ધરનારા ગુરુ શ્રી ભદ્રંકરવિ.મ.ની કૃપાથી આત્મતત્વસમીક્ષણની રચના તરત જ થઈ છે.(૫૪)

।। આત્મતત્ત્વસમીક્ષણ પૂર્ણ ।।

परिशिष्ट–२

आत्मतत्त्वसमीक्षणम् अंग्रेजी अनुवाद

जी. जी. भागवत

ATMA-TATTVA-SAMIKSHANAM
(A thoughtful consideration of the true nature of the Soul)

Having saluted out of devotion (Lord) Mahavira and the spiritual teacher as well as (my) mother and father I compose, for the welfare of all, (the poem entitled) "Atma-Tattva-Samikshana" - a thoughtful consideration of the true nature of the Soul.(1)

The aspirant attains renunciation impregnated with learning through the sacred knowledge of (his own) self and then having abandoned the objects of senses (he) longs for liberation.(2)

Having accepted further the tenfold religion such as forbearance, humility, straightforwardness etc. through sincerity, he (the aspirant) always abides in the Supreme Spirit, separating (his) body (from the Soul).(3)

Establishing his own self in the Supreme Spirit with witness-like aloofness, a wise (aspirant), endowed with the abstract meditation of Supreme Spirit, appears like one, who is liberated while alive.(4)

The (aforesaid aspirant), who is always pure, devoid of attachment and form and who is free from bondage, is neither the doer nor enjoyer, being bereft of all pairs of opposites. (5)

He (the aspirant) beholds this Universe like a dream through the perception of his own self and now being immersed in the highest joy, he become (all) perfect indeed.(6)

Having understood through discrimination that the nature of his self is pure and enlightened, he (the aspirant) gives up low-mindedness, discarding the high opinion of his (own) body.(7)

Thus having a worthy feeling of his being liberated, he always becomes devoid of activity everywhere; (further) being free from all delusions he surely abides in the body as liberated soul.(8)

He (the aspirant), who has pure, devoid of waves (in the form of doubts) and who is absorbed in dalliance of the Supreme Spirit, abides in the formless (Supreme Spirit) having given up everything, possessed of form.(9)

Being free from the deception of delusion and devoid of (the felling of) mineness he (the aspirant) visualizes the true nature of the Supreme Spirit in his own self.(10)

Then by means of knowledge he (the aspirant) quickly obtains rest in the pure Supreme Spirit only through the application of the support of his own self.(11)

Considering non-duality everywhere with an impartial attitude, the best among the sages becomes free from desire even for worldly life as well as for liberation.(12)

(Further) his misery, produced from the basis of duality, perishes and he enjoys the highest pleasure, being immersed in the nectar of delight of the Supreme Spirit.(13)

Having understood that the soul is eternal and behaviour of world (is) perishable, a discriminating person quickly becomes averse to worldly prosperity and the desire for sensual enjoyments.(14)

When the pure Supreme Spirit is attained, the sense of proprietorship cases and complete renunciation takes place in the case of one, who sees the difference between the eternal and non-eternal.(15)

Having considered that the body is inert, is an aspirant, who is not infatuated by matter and who is content with knowledge, perturbed when death confronts him?(16)

It does not make any difference (whatsoever) to him whether

he is in a village or in a forest. There is no doubt that he always has equal disposition everywhere.(17)

A wise man, resorting to equanimity, is indifferent to censure (or) praise (and) never gets angry (or) feels satisfied, being desirous of liberation only.(18)

Is he (the aspirant), who has nothing fit to be received or (nothing) fit to be abandoned in (this) world of moveable and immoveable things and who has no doubt as regards the desirable and undesirable things, besmeared with Karman?(19)

As a Yogi, being (well) situated in a high position does not feel (any) pleasure, in like manner he does not feel (any) grief even when he is (on the brink of) total destruction.(20)

As aspirant certainly becomes devoid of attachments on account of abandonment of all contacts and becomes indifferent everywhere when there is the accomplishment of Yoga in the form of equanimity.(21)

Some one knows in reality, what is known as Super Soul, is 'I' myself is alone and when the feeling viz."I am He" is produced, ah! There is no fear from anywhere.(22)

(One finds) similarity (of tendency) in the taking an active part in worldly affairs but owing to the difference of thought-activity, wherein an ignorant person is besmeared (with Karman), therein a wise one is not contaminated (by it).(23)

As the sky is not contaminated by smoke and lotus-leaf is not besmeared with water, so a Yogi, who is established in his own self is never contaminated either by merits or demerits.(24)

There is no doubt in this respect that (the aspirant) who is well-versed in scepticism and expert in knowing duality and non duality, gets himself quickly absorbed in the true nature of his own self.(25)

One who is free from passions, always (becomes) librated

but Karmic bondage accrues to one who is full of passions. Therefore, the formula of prayer for final emancipation viz. "I am not the (false) ego" (and) "nothing is mine"- is mentioned.(26)

In the case of a (soul) worthy of liberation only, the annihilation of all Karmas as well as the great assuagement (of senses) is produced in reality on account of the renunciation impregnated with knowledge.(27)

The impressions left upon the mind by good or bad actions surely (constitute) the worldly life (and) the abandonment of them is considered to be the final emancipation. Therefore, be free from (such) impressions with all endeavour.(28)

By the abandonment of the (aforesaid) impressions only, (an aspirant) makes his abode well himself in the true nature of his own self in a moment and therefore the Self becomes the teacher of his own self.(29)

One, who sees the whole world transitory like jugglery, attains the highest bliss, resorting to (real) knowledge and renunciation.(30)

Having abandoned the worldly prosperity and the desire for carnal gratification, a wise man, who always has a liking for religion as well as for liberation, makes final emancipation well ensured for him.(31)

One, who is unattached, becomes happy in this world and one, who is attached, becomes unhappy. Therefore it is considered that eternal happiness accrues to one who is (much) advanced in renunciation.(32)

The separation from (material) bondage is expounded by the knowers of

Truth to him only, in whom the determination viz. "I am not the body and the body is not mine"- springs up.(33)

The chief of the Yogis, who is unstained, void of indecision

and always absorbed in his own self and who has no desire even for his own body, appears splendid.(34)

When the mind is turned inward on account of cessation of all anxieties and when (one) has no liking for objects of senses, then the real nature of the human soul becomes visible.(35)

The comfortableness of mind truly abides in righteousness, whereby the aspirant (leads a life) with the feeling of equality.(36)

All the ascetics, who are stationed within the body (looking forward to the bodily pleasures and comforts), are regarded as seeming ascetics and all the ascetics, who are situated outside the body (looking forward to the 'great beyond') are, certainly ascetics in truth.(37)

Owing to the cessation of bodily activities and anxieties, an absorption of the mind (of a Yogi) into the (true) nature of his own self comes as a result, whereby the removal of dross in the form of auspicious and inauspicious Karmas takes place without (any) effort.(38)

Only the mind (of a Yogi), in whom desirelessness for good and bad sense-objects in worldly life arises, gets absorbed quickly into his own self.(39)

The flaws such as love, hatred etc. are declared (to be) the properties of the mind. But it is related that the extinction of them is certain, when the mind is destroyed.(40)

Having understood that the feeling of mineness about all objects is a cause of bondage, a Yogi, becomes free from the senses of proprietorship and devoid of doubts certainly.(41)

This soul definitely devoid of bandage is the embodiment of knowledge. He is naturally unchangeable, indifferent to worldly attachments and is always (playing the role of) a witness.(42)

The memory of worldly thoughts in the case of a Yogi, whose mind has become void and who constantly seeks for spiritual

knowledge, gradually wanes owing to the abstraction of mind resulting from continuous deep meditation.(43)

One, who is void of joy and sorrow and who resorts to equanimity everywhere is characterized as one who resembles the object of meditation (being lost) in profound meditation of Supreme Spirit only.(44)

When one surely sees that one's soul is different from one's own body, then there is no doubt that the practice of deep and abstract meditation (of the Supreme Spirit) is agreeable.(45)

When the mind, which is set free by all the pairs of opposites, would become void of deliberation, then there would be bliss, indeed, without any effort owing to the annihilation of desires.(46)

When the sprout in the form of worldly life is destroyed through all oblivion, a Yogi, who is freed from the forest of worldly existence, is not born again.(47)

Owing to the termination of all functions the mind (itself) of an ascetic, who performs religious deeds without caring for (their) rewards, quickly becomes devoid of throbbing and well absorbed into his own self.(48)

One, who is conversant with Yoga and who has taken rest in his own self because of the disappearance of the mind, abides in the body like water in the pot of ghee.(49)

A Yogi, who is free from desire, should have no anxiety even for emancipation owing to the power of discriminating when desirelessness overtakes him everywhere.(50)

Some extraordinary Yogis, who really know the 'freedom of will' of the aspirants explained in the religious treatise of magical and mystical formularies, are very rare indeed.(51)

The lord of Yogis, who is devoid of all wish and who is intent on the delight of his own self may resemble Jina (Arhat) because of his abiding in profound meditation.(52)

Perfect absorption of thought into the Supreme Spirit is produced by peace of mind only through the ascertainment of the highest truth (the Supreme Spirit). Therefore investigation of the Highest Reality should be made with all efforts.(53)

The improvisation "Atma-Tattva-Samikshana"- a thoughtful consideration of the true nature of the Soul- is composed (by me) through the favour of (my) spiritual guide **Shree Bhadrankara vijayaji** by name, who held the rank of **'Pannyasa'**.(54)

Here ends (the poem) "Atma-Tattva-Samikshanam".

परिशिष्ट–३

आशाप्रेमस्तुतिः अंग्रेजी अनुवाद

जी. जी. भागवत

A POEM IN PRAISE OF ASHA'S LOVE

Having saluted with devotion (Lord) Mahavira and the spiritual teacher as well as (my) mother and father, (this) divine poem in praise of Asha's love is composed (by me) from the view-point of 'Tantra'. (1)

Having composed a poem full of sentiments with the waves (in the form of words) arisen in (my) delighted heart, oh Asha! I always perform the act of washing your feet with devotion. (2)

Oh Asha! I am certainly the meritorious and most fortunate person in the world. Hence my (power of) speech proceeds to praise you who are worthy of propitiation. (3)

Oh Asha! Considering your beauty (to be) the wonderful nectar, it is drunk by me with (my) eyes, having received it in a bowl of love. (4)

Oh Asha! Having meditated upon you only, with a concentrated mind, one who has conquered one's senses becomes the lord incarnate of the great goddess of learning. There is no doubt in this respect. (5)

Oh Asha! Poets, who commenced with ease to praise the wonderful beauty of your body, stood still in absence of any standard of comparison. (6)

Oh Asha! Accompanied by various amorous gestures, creation love and desire of sensual enjoyments, I think, you alone take delight in my heart for the satisfaction (of us both). (8)

Oh Asha! What is called (perfect) harmony of the feeling of love is the proper union of hearts? There occurs the springing up

of strong love, I think, due to the experience of it (i. e. such harmony) only. (9)

You alone constantly make honest love to me. Therefore, Oh Asha! Your praise even is the destroyer of my anguish. (10)

Oh Asha! (My) mind, which has attained harmony of the feelings of love through the application of (my) life-winds and which is clung to you only owing to love, becomes stainless. (11)

Oh Asha! There is no doubt here that you are expert in (all) arts in the world. Therefore people worship you always, considering you to be a goddess of arts. (12)

Oh Asha! An indescribable wave, which has arisen in my delighted heart owing to your coquettish and amorous gestures, bestows on me the joy of Brahman (the supreme Spirit). (13)

Oh Asha bearing a pure smile! With all sincerity I worship you, who are a goddess full of permanent joy (and) a bestower of philosophical knowledge. (14)

Oh Asha! When you are pleased, the trees in the form of my desires bear fruit. (Further) the knowledge of Brahman is obtained (and) this soul appears clearly. (15)

Paving the way quickly (to enter my heart) by means of side-long looks, Oh Asha! you have speedily settled in my lotus-like heart like female bee. (16)

Oh Asha! You make my mind cool at once with a shower of nectar in the form of speech in order to make me think upon the highest truth. (17)

When the mind becomes pure, the flashing of the true nature of the soul would occur. Therefore, Oh Asha! Establishing my mind in you, I purify (it). (18)

Oh Asha! You, the female companion of Girish (Shiva), are a great power (and) his fortunate beloved as dear as his life; (and) he also is ever satisfied (being accompanied) by you. (19)

Oh Asha! Immersed as I am in meditating upon you, my body is marked with horrification (horrification). (Further) I forgot the whole world, being unable to feel any outside sensation. (20)

Placing his heart continuously on you with pure affection, Oh Asha! Even Girish (Shiva) gets excellent knowledge at once. (21)

Being unable to bear separation (from you) in a lonely place, Oh Asha! I, with my eyes closed, always meditate in (my) mind upon you alone, who are as dear as my life. (22)

Oh Asha! You, who know all the feelings (and) embody the highest joy, have actually attained unity of souls (and you are) completely absorbed indeed in my heart. (23)

Oh Asha! Observing your highest love I, being struck with wonder, always meditate upon you in (my) mind in such a manner that I may get your company. (24)

Oh Asha! I make you a humble supplication by utterings (uttering) filled with love; (hence) enjoy love-sport with me by giving embraces etc. (25)

Oh Asha! Remembering your amorous gestures I, with (my) mind and senses completely absorbed, obtain highest peace being excessively devoted to your meditation. (26)

Oh Asha! Closing my eyes I, being completely united with the life-winds and the mind of yours, see you alone by means of profound meditation, as if (you have) approached (me in person). (27)

Oh Asha! I, whose mind is pleased with yours words endowed with equity, know the charming manner of (your) love owing to your favour. (28)

Oh Asha! Having observed your love (and) understood your good behaviour, (I think) my mind, in a moment, gets completely absorbed in the feeling of delight of the soul. (29)

Oh Asha! All (people), who are expert in the scriptures, always make efforts, I think, to constantly praise you of pure heart. (30)

Having manifested (yourself) on the stage of (my) mind, I think, Oh Asha! You, the embodiment of love, amuse yourself with me by (indulging in) jokes and sports. (31)

Oh Asha! You are eternally situated in the left side of my body. I think of you, having a smiling face (and) being always sixteen years of age. (32)

Oh Asha! I worship you with divine means of doing homage existing in (my) mind and offer an oblation of the objects of senses etc into the fire of knowledge. (33)

Oh Asha! There is no doubt that one, by name Girish (Shiva), is melted with love indeed and the same (one) is amusing here in your vicinity, solidifying himself (in bodily form). (34)

Oh Asha! I cannot exist without you; similarly you cannot exist without me. This is certainly proved by our own experience; otherwise the feeling of love is lost. (35)

Oh Asha! Having well understood your (own) beautiful form, full of the feeling of love only, be immersed quickly yourself alone in the highest bliss. (36)

Being dipped into the highest bless (and) marked with horrification and tears of joy, you have, Oh Asha! Eternally settled in my mind. There is no wonder here. (37)

When the harmony of the feelings of love is manifested, the distinction between a man and a woman does not exist. Oh Asha! by the mere knowledge of it, Vasana (the impression unconsciously left on the mind by past good or bad actions) itself is purified. (38)

Just as during union there occurs the accomplishment of the sentiment of love owing to the excitants etc., so also Oh Asha! No doubt, there occurs the rise of agony in separation. (39)

Therefore, attaining the support, Oh Asha! You should make

the volition quickly devoted to the contemplation of Brahma (the supreme spirit) with sincerity. (40)

Oh Asha! Your love, which is best, beyond words (to describe), motiveless and to be self-realised, exists towards me like a clear mirror. (41)

Oh Asha! I am always controlled by the fetter of your love. (Further) being under your control I am your attendant and you alone are my mistress. (42)

Oh Asha! You, who are a goddess (capable of) bringing about the unification of (our) love, and who are granting complete identification with the Supreme Spirit and showering nectar in the form of love, have become more (dear) to me than my life. (43)

Oh Asha! The feeling of (mutual) love between a man and a woman amuses itself in our hearts. Therefore there is not an atom of difference between you and me. (44)

Oh Asha! In meditation your beautiful form as if actually comes to my mind; and hence, owing to intensive separation the torment even becomes the bearer of fruit. (45)

Oh Asha! In separation even without meditation I always see everywhere with my eyes you alone, as if, actually standing before me. (46)

Oh Asha! Being under the influence of love, I tell you a secret to-day. It should be understood (by you) that just as there is no distinction between the Moon and the Moonlight, so also there is no distinction between us both. (47)

Oh Asha! Enhancing the delight of my heart by amorous gestures, you, who are an appreciative person, make me afflicted with love in every way. (48)

Oh Asha! When one's own form, which is always endowed with Shiva and Shakti, is known then our separation even may become sweet (and) the situation (of us both) may, indeed, become

new (every time). (49)

Oh Asha! Only on hearing the beautiful description of your wonderful form, the highest delight is produced just in a moment only in respect of persons endowed with merits. (50)

Oh Asha! It is known through your charming gestures that your sport, accompanied by love, is surely of various kinds but oh wonder! It is not possible to express it in words. (51)

Oh Asha! With (my) mind filled with love (while wandering over) play-gardens and amusement-parks, the delight because of relish for sports, is obtained here (by me) together with you. (52)

Oh Asha! Being attached to love-sports, you are indeed the enchantress of (my) eyes, ears and mind but, when filled with the sentiment of love, (you become) the evincer of Supreme Spirit. (53)

Oh Asha! I, being infatuated by the virtue and beauty of yours only, always see you, alone, lying beside me in (my) dream. (54)

Oh Asha! (While) absorbed in your meditation, the image of the Supreme Spirit full of excellent love is produced in my mind spontaneously. (55)

Oh Asha! Having obtained your love, this divine praise featuring distinctively your propitiation is continuously uttered by Girish (Shiva). (56)

Oh Asha! Being engrossed in your love, every moment I mediate upon you with all my devotion for the destruction of the delusion of worldly life. (57)

Oh Asha! Laughing yourself and making others always laugh only with sweet utterances, you quickly take me to a position void of anxieties etc. (58)

Oh Asha! In your separation the forgetfulness of the body as well as the aversion to sensual objects etc. (and) the zenith of yoga is experienced (by me). (59)

Oh Asha! Being the manifestation of the highest truth, you, alone, whose lotus-like feet are praised by ascetics, shine in the half of the body of Girish (Shiva). (60)

Oh Asha! Having understood the knowledge of the Supreme Spirit, my mind, being ardent due to excessive joy, is held firmly in meditation of reality through your favour. (61)

Oh Asha! Gaining real knowledge and forming the hollow of the palms of my palms of my hands I (myself), remaining in secret always meditate upon you, the Supreme Goddess of the three worlds. (62)

Oh Asha! Having placed you in my mind and having placed my mind in you (and thereby) achieving the highest unity of souls, I always remain in deep concentration. (63)

Oh Asha! Oh Goddess as dear as (my) life! Offering obeisance to you, I, being accompanied with joy and void of any external attention, always enjoy internal happiness. (64)

Oh Asha! The tremor, the appearance of perspiration as well as horrification, the choking of the throat (voice), the tears of joy and forgetfulness of the body are (inferring) signs (of a person engaged) in your meditation. (65)

Oh Asha! In good faith I always worship you of a fair face, who are the well-known Supreme Goddess and a propitiated great deity. (66)

Oh Asha! Being strongly attached to love, I always beg for you, who are the embodiment of all sacred scriptures and the bestower of Supreme joy, for attaining the final beatitude. (67)

Oh Asha! Your pair of feet is able to protect all from the fear (and) is a great and wonderful shelter also to those who are tormented by (three-fold) distress in (this) worldly life. (68)

Oh Asha! Offering obeisance to you the bestower of all blessedness, my mind is immediately wrapped up in the bliss of

the Supreme Spirit. (69)

Oh Asha! You are the embodiment of the (divine) power and a bestower of success in desired objects; (and further) you, being united with Girish (Shiva) indeed are the accomplisher of the joy of liberation. (70)

Oh Asha! You are, indeed, the excellent source of all poetical compositions. The best among poets, who worship you, become thoroughly proficient in (all) sentiments. (71)

Oh Asha! I have attained happiness through the company of yours only. Never I am oppressed by Kali, embodying Yama-the God of death. (72)

Oh Asha! Having established you in (my) heart, the stability of mind as well as the joy of the Supreme Spirit is speedily produced because of (my) proceeding on the path of knowledge. (73)

Oh Asha! For severing the liking for worldly life, I give every moment an account of your praise, which is the bestower of liberation and accomplisher of (spiritual) harmony. (74)

Oh Asha! Owing to harmony only the aspirant would be liberated while alive; then he may verily stay in the body like water in the pot of ghee. (75)

Oh Asha! Even though being at a distance you, being expert in the science of love become the bestower of supreme bliss, indeed, by mere thinking (of you). (76)

Oh Asha! Being endowed with fifty syllables, you are the bestower of all eloquence and (a kind of) elixir capable of removing the great apathy in this world. (77)

The bliss in harmony is divine and indeed the best of all in reality. But, Oh Asha! It is never secured by persons, who are extroverts. (78)

Oh Asha! The joy of Brahman is indeed produced in a moment owing to (spiritual) harmony; and therefore I think that the worship

of God Shiva is not defiled in the body of an ascetic of the highest order. (79)

Oh Asha! You are attributeless embodiment of primary power and void of (any) name and form. Your (coquettish) dalliance though accompanied by attributes, is meant only for obliging others. (80)

Oh Asha! Your propitiation alone which is an abode of pleasure (derived) from harmony is the bestower of supreme bliss and exhibitor of the knowledge of Brahman. (81)

(An aspirant), who may desire emancipation of his (own) self in (this) worldly life, full of miseries shoul, Oh Asha! Practice (the art of being in complete) harmony (through the grace of a spiritual guide) abandoning carelessness. (82)

Oh Asha! There is no doubt that your proximity alone is holy place and that the prowess of your favour is the bestower of knowledge, auspiciousness and final beatitude as well. (83)

Oh Asha! Being always overcome with excessive joy, I bathe my soul with the shower of nectar, produced through your contact with Shiva. (84)

Oh Asha! Being always overcome with excessive joy, I bathe my soul with the shower of nectar, produced through your contact with Shiva. (85)

Oh Asha! Your skill, by which equanimity alone spreads when harmony is arisen, is perceived (by me) indeed in (expressing) the sentiment of love (also). (86)

Oh Asha! You are endowed with (the quality of) Sattva and hence you are certainly delighted with the discourse on (spiritual) knowledge; (further) being free from the desire of worldly absorbed in remembering Girish (Shiva). (87)

Oh Asha! It is a great pleasure to Girish (Shiva) in seeing, in touching, in conversing (with), in remembering you and (also) in

uniting with you alone as well. (88)

Oh Asha! Out of devotion you always wish Girish (Shiva) (all) happiness and hence you alone become the resting-place of (his) mind. (89)

Oh Asha! You are one and one woman only proceeding to Girish (Shiva) with a view to meeting him through flurry influenced by lust because of former love. (90)

Oh Asha! Being endowed with beauty and grace and accompanied by love, you only who (appear) charming due to the dalliance of your eye-brows, are pursued by Girish (Shiva). (91)

Oh Asha! The secret that 'Shiva is Shakti and Shakti is Shiva' is indeed related to 'Tantras'. I think that it is perceived by men of taste in (spiritual) harmony. (92)

Oh Asha! In this world propitiation of yours only is always performed by (aspirants) holding different doctrines through innumerable ways of meditation. (93)

Oh Asha! When you are seen (by me), my mind always becomes pleased and thereby our bond of love seems to be primeval. (94)

Oh Asha! It is defined in 'Tantra' that the Universe is the embodiment of Shiva and Shakti. When this knowledge becomes mature, liberation would certainly be there. (95)

The wise people called the non-duality of Shiva and Shakti as (a kind of) yoga. Thereby Oh Asha! Certainly the highest joy is well experienced (by yogis). (96)

Oh Asha! They (the aspirants), who know the beautiful from of ours only as excellent nectar, obtain liberation, being expert in realizing the true nature of Shakti-the female Divinity-(the counter-part of Shiva). (97)

Oh Asha! The true nature of your holy power is indeed, in reality, a female form, which is known from the lips of (the revered)

teacher and which is the accomplisher of (worldly) enjoyments and final beatitude. (98)

All things in the world are attainable through a woman; she alone is the embodiment of liberation. Therefore, Oh Asha! The aspirants, who know the principle for which a 'woman' stands, obtain the highest happiness. (99)

Oh Asha! Considering Girish (Shiva) to be the visible form of God, you always wait upon him honourably with delight owing to be devotional disposition of (your) mind. (100)

Oh Asha! Owing to excessive love you are following the behaviour of my mind; therefore, I feel pleasure of pleasure of being in harmony with you. (101)

Oh Asha! A man, who is endowed with the knowledge of yoga because of your favour, certainly may become free from passion (and) a deserter of all internal (matters). (102)

Oh Asha! You alone are omniscient and the destroyer of the snare of worldly existence. Therefore, may my highest love rest in you in every birth. (103)

Oh Asha! Being delighted, I offer my obeisance to you, who are the embodiment of Supreme spirit incarnate and who are interested in the dalliance of the soul and who are perpetually beyond all states. (104)

Oh Asha! Endowed with love, you are the pre-eminent and true beloved of one who has power over spiritual harmony and who has realised the real nature of soul. (105)

Oh Asha! Always the imitation of (your) beloved in all positions or on the occasion of sportive dance is, I think, a great vow on your part. (106)

Oh Asha! What is the use of worldly costoms and external religious activities (such as sacrifices etc.) then to him, who becomes intent on meditation, bearing you in mind? (107)

Oh Asha! You, alone the embodiment of nectar in the form of equanimity, who is the destroyer of the poison in the form of passions etc., become the bestower of final beatitude. (108)

Oh Asha! You who are a great (primary) power, going upward, in a moment, through the central path of the six mystical circles in the body, are (considered to be) as dear to a yogi as his life. (109)

Oh Asha! Self-experience shines forth at once owing to the harmonious union; the idea that 'I am Shiva' is produced (and also) the impartial attitude (is seen) everywhere. (110)

With a view to enhancing the feeling of love (this) "Asha-Prema-stuti" is composed (by me) through the favour of (my) spiritual guide by name Shree Bhadrankara Vijayaji, who was holding the rank of 'Pannyasa'. (111)

Here ends "Asha-Prema-Stuti".

मुखपृष्ठ परिचय

प्रकृति के प्रसिद्ध पांच मूल तत्त्व है । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश । भारत का प्रत्येक दर्शन या धर्म इन पांच में से किसी एक तत्त्व को केंद्र में रखकर विकसित हुआ है । जैन धर्म का केंद्रवर्ती तत्त्व अग्नि है । अग्नि तत्त्व ऊर्ध्वगामी, विशोधक, लघु और प्रकाशक है ।

श्रुतज्ञान अग्नि की तरह अज्ञान का विशोधक है और प्रकाशक है । अग्नि के इन दो गुणधर्मों को केंद्र में रखकर मुखपृष्ठ का पृष्ठभूमि (Theme) तैयार किया गया है ।

कृष्ण वर्ण अज्ञान और अशुद्धिका प्रतीक है । अग्नि का तेज अशुद्धियों को भस्म करते हुए शुद्ध ज्ञान की ओर अग्रसर करता है । विशुद्धि की यह प्रक्रिया श्रुतभवन की केंद्रवर्ती संकल्पना (Core Value) है ।

अग्नि प्राण है। अग्नि जीवन का प्रतीक है । जीवन की उत्पत्ति और निर्वाह अग्नि के कारण होता है । श्रुत के तेज से ही ज्ञानरूप कमल सदा विकसित रहता है और विश्व को सौंदर्य, शांति एवं सुगंध देता है । चित्र में सफेद वर्ण का कमल इसका प्रतीक है ।

श्रुतभवन में अप्रगट, अशुद्ध और अस्पष्ट शास्त्रों का शुद्धिकरण होता है । शुद्धिकरण के फलस्वरूप श्रुत तेज के आलोक में ज्ञानरूपी कमल का उदय होता है ।